आयुर्वेदमहोपाध्याय

शंकर दाजी शास्त्री पदे,

संस्थापक और संचालक—आयुर्वेदविद्यापीठ,

नासिक, पंचवटी.

वनौषधिविज्ञान.

प्रथम भाग.

विषयानुक्रम.

भूमिका.

ओषधीना परां प्राप्तिं कश्चिद्वेदितुमर्हति
योगज्ञस्तस्य रूपज्ञस्तासां तत्वविदुच्यते ॥

संपूर्ण वैद्यशास्त्रका सार या फल चिकित्सा है और चिकित्सा औषधद्रव्याश्रित है; इसलिये वैद्यशास्त्रकी सफलता, विना औषधिज्ञानके हो नहीं सकती. औषधिद्रव्य सामान्यतः तीन प्रकारके होते हैं. उद्भिज्ज, खनिज और प्राणिज. इन तीनोंमें उद्भिज्ज द्रव्य, जिन्हें सर्व साधारण लोग औषधि कहा करते है; शेष दो प्रकारके द्रव्योंकी अपेक्षा प्रभाव-शीलतामे कम न होनेपरभी उनसे अल्पतर—आयासलभ्य, अनपाय-कारी अर्थात् निर्दोष और सत्वप्रधान होनेके कारण सर्व साधारणके लिये अधिक उपयोगी हैं. इसीलिये हमने अपने प्राचीन वैद्यकके अ-[illegible]ार्थ और सर्वसाधारणकी आरोग्यरक्षाके निमित्त जो यह वैद्यक-[illegible]ा आरंभ की है इसमें वनौषधिविज्ञानको अग्रस्थान दिया है. शा-[illegible]दान आदि अंगोंका ज्ञा[illegible] नेकेलिये विशेष समय और योग्य [illegible]ावश्यकता है जो हरेक आदमीके लिये सहज साध्य नहीं है. [illegible] बीसों प्रकारके छोटे बडे रोग हरेक आदमीके पीछे पडे हुए [illegible] उसके साथ साथ दारिद्र्यभी अपना कदम आगे बढा रहा है. [illegible]ामें प्रत्येक मनुष्यको छोटे बडे रोगोंके सुगम उपाय जानना [illegible]क है. इन दिनों प्रत्येक मनुष्यको कितनेही अंशामें अपना वैद्य आप बनना चाहिये. इस पुस्तकको पढकर सामान्य व्युत्पत्ति रखनेवाले पुरुष तथा स्त्रिया इस योग्य बन सकें यही इस पुस्तकका उद्देश है. वनस्पतियोंका गुणदोषज्ञानमात्र होनेसे मनुष्य उसका ठीक उपयोग नहीं कर सकता. उसके लिये उनका स्वरूपज्ञान होना-उनको पहचानना अत्यंत आवश्यक है. स्वरूपज्ञान न होनेसे केवल दवा बेचनेवालोंके भरोसे दवाइया लेनी पडती है. जहा दवाफरोश [illegible] होते वहा घरके आगनमें बीसों दवाइया पडी रह जाती है [illegible]र आदमी उनको दूरदूरतक ढूंढते फिरते हैं. यह सर्वसाधारण रोगोंकी दशा हुई. परंतु वैद्योंकी दशाभी इससे कम शोचनीय नहीं [illegible] वे बीमारको केवल नुस्खा लिख देते है परंतु उनको ठीक वेही दवा

उसमें मिलता है या नहीं इस विषयमें वे नितांत अज्ञ होते हैं. सारांश, वनस्पतियोंका केवल गुणदोषज्ञान विना उसके स्वरूपज्ञानके निष्फलमाय है. स्वरूपज्ञान केवल वर्णनसे अच्छी तरह नहीं हो सकता. इसलिये इस पुस्तकमें हमने प्रत्येक वनस्पतिके स्वरूपका वर्णन करके उसके साथही उसके पत्ते, फूल, फल आदि प्रत्येक अंगका हूबहू रंगीन चित्रभी दिया है. प्रत्येक वनस्पतिका उत्पत्तिदेश, फूलने की ऋतु, उसके शास्त्रीय गुणदोष, शास्त्रीय औषधयोग, रासायनिक पृथक्करण, अनेक प्रकारके अनुभवसिद्ध औषधयोग तथा उसके सबंधी वाणिज्यकी बातें इनका विस्तारसे वर्णन किया गया है. आजतक देशी भाषाओंमें वनौषधिविषयक अनेक प्रकारकी पुस्तकें निकल चुकी हैं. परन्तु हमें विश्वास है कि जो सारासार विवेकशील विद्वान् इस पुस्तकको पढेंगे वे मुक्तकण्ठसे कहेंगे कि यह पुस्तक अपने ढंगकी एकही है. और किसी पुस्तकमें इतना विस्तृत और विविधप्रकारका निरूपण नहीं मिलेगा इन सबसे बढकर बात इस पुस्तकमें यह है कि इसमें जो जो औषधयोग या अन्यान्य लिखे गये हैं वे प्रायः खुद हमारे अनुभव किये हुए हैं. इस प्रकार लगभग एक सहस्र वनस्पतियोंका वर्णन करनेमें पुस्तक बहुतही बडी होगी जिसके छपनेमें कई बरस लग जायेंगे और इतने बडे दामकी एक पुस्तक लेनाभी लोगोंको मुश्किल होगा. इसलिये हमने इस पुस्तकके भागश: प्रकाशित करनेका निश्चय किया है. जिसके अनुसार यह प्रथम भाग पाठकोंके सामने उपस्थित किया गया है. रसिक और गुणज्ञ पाठकोंसे कहना न होगा कि इस पुस्तकको बनानेमें कितना समय, श्रम और द्रव्यका व्यय करना पडा है हमारा विचार इस विषयमें औरभी कुछ सुधार करनेका है परन्तु "सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति" सब काम पैसेके हैं हमारे उदार और रसिक पाठक हमें ज्यों ज्यों सहायता करते जाएंगे त्यों त्यों हम इस विषयकी उपयोगिता और अपूर्णता बढानेका प्रयत्न करेंगे. अंतमें सब सज्जनोंसे सविनय निवेदन है कि इस पुस्तकमें यदि कोई दोष उन्हें प्रतीत हों या कोई सुधार करना उन्हें अभीष्ट मालूम हो तो वे अपनी अपनी सम्मति हमें लिख भेजें ताकि आगेके भागोंमें उनका योग्य विचार किया जायगा. इति शम्.

सं. पाठा- म. पहाडवेल.
सं. अपामार्ग म अघाडा.
G V LAD

वनौषधिविज्ञान.

भाग १ ला.

१ पाढ (हिंदी.)

संस्कृतनाम-पाठा, अंबष्ठा, अंबष्ठिका, प्राचीना, पापचेलिका, पाठिका, स्थापनी, श्रेयसी, वृद्धकर्णिका, एकाष्ठीला, कुचेली, दीपनी, वरतिक्तका, तिक्तपुष्पा, बृहत्तिक्ता, विद्धकर्णी, शिशिरा, वृकी, वृत्तपर्णी, वरा, देवी, मालती, त्रिवृत्त, वृकादनी, ऐलावालुकरसा, यूथा, एकैषी, विद्धकर्णिका, तपनी. **मराठी**-पहाड. **गुजराथी**-काळीपाड, वेणीवेटियु, **बंगाली**-आकनादि, आकनादि, निमुख. **कर्णाटकी**-पाठा, अगारसुटि, हगळशुंठी. **तैलंगी**-पाडचेट्टु. **तामिल**-पाडा. **तुळु** निम्पले. **मलबारी**-पाटाकिळंगु. **लाटिन** - Stephania hernan lifolia स्टेफानिया हरनांडिफोलिया.

वर्णन-यह एक 'चंद्राकारबीज वाली' जातिकी बेल है. यह विशेषतया पहाडी प्रदेशोंमें होती है. बंगाल, बिहार, कोंकण, सिंगापूर आदि प्रदेशोंमें यह बहुत मिलती है. दोहजारसे पाच हजार फूट ऊंचाईतक शिमलेके पहाडपर यह कसरतसे मिलती है इसको डॉक्टर डिमक और ड्यूमन साहबने भूनिंबिषी अथवा बेंगीबेल कहा है. गोवा (जो दक्षिणमें पुर्तुगालवालोंका राज्य है) में इसीको पारवेल कहते हैं. इसके पत्ते आकारमें कुछ कुछ गुरुच या पीपलके पत्तेके जैसे दीर्घ-वर्तुल, पतले और चिकने होते हैं. इसकी नोक पीपलके पत्तेकीसी लंबी नहीं होती. यह पत्ते बराबरमें, जोडमें, न रहकर-एक दूसरेसे दूर और बेलकी दूसरी तरफ-इसप्रकार होते हैं. पत्तोंके डंठल लंबे होते हैं. फूल छोटे छोटे, सफेद, कुछ जरदी लिये हुए पत्तोंके कोनोंमेंसे निकलते हैं. इसपर गोलमिर्च या मटरकेबराबर लाल रंगके फल आते हैं.

सीलोनमें जिसको 'वेणीवेल' कहते हैं उसीकी जडको पाढकीजड समझकर, वैद्य उपयोगमें लाते थे यह बात एन्सलीसाहबने अपने अनुभवके तोरपर लिखी है. असली पाढकीजडको सीधा और बेडा चीरकर देखनेसे मालूम हुआ कि यह जड गुरचके ही जातकी किसी दूसरी बेलसे निकली

हुई हो. एन्सली साहबके समयसे लगभग मौजूदतक अर्थात् सन १८७३ तक लंडनके पसारियोंमेंयहा और यूरोपके और और स्थानोंमेंभी 'परायरा' वनस्पतीकी जड करके पाढकी जड भेजी जाती थीइस अभिप्रायके किनाल्डो उसाहनको देखसे सन १८४७ ईसवीमें Pharmacopia Indica फार्माको पिया इडिका नामक औषधिसंग्रहग्रंथमें परायरा और पाट यह दो नाम एकही वनस्पतिके हैं इसतरह उल्लेख किया गयाथा परंतु सन १८७३ में ड्यानियल हॅन्बेरी साहबनें दोनोंके जडकी सूक्ष्मदर्शक यंत्रसे (Microscope) अच्छी तरहसे परीक्षा कर और असली पाढकी जड अर्थात् वेलीकी जडकी रासायनिक अर्थात् घटकावयवपरीक्षा (Chemical Examination) करके, उक्त दोनों वनस्पति एक दूसरेसे भिन्न हैं यह बात सिद्धान्तके तौरपर प्रकाशित की थी इतनी बात अवश्य है कि दोनों वनस्पतियोंके गुण बहुत कुछ मिलते जुलते हैं.

पाढकी वनतिक्तिका नामकी दूसरी एक जाति है. इसको लॅटिनमे cissampelos hexandra कहते है देशभाषामें इसकोभी पाढही कहते हैं. इसके जडके अदर टूटा हुआ अथवा क्षीण हुआ शरीरका अग बराबर पुष्ट कर देनेका और भर लानेका गुण है यह कडवी, चरपरी, गरम, कसैली, और अतिसार, रक्तपित्त, त्वचाके विकार और बवासीरको मेटनेवाली है. इसकी जडमें 'बर्बरीन' नामका एक सत्त सैंमें आधा भाग इस प्रमाणसे रहता है.

गुण—कडवी, चरपरी, गरम, टूटी हुई हड्डी या और अग जोडनेवाली, तीक्ष्ण, हल्की, और पित्त, जलन, शूल, वातिसार, वायु–पित्त–ज्वर, कै, विषदोष, अजीर्ण, त्रिदोष, हृदयके रोग, कोढ, खुजली, दमा, कीडे, गुल्म (गोला), उदररोग, जखम, कफ और वादी इन विकारोंको नष्ट करनेवाली है. पुराने डॉक्टर एन्सली और अर्वाचीन डॉ. ओशॉनेसी इन्होंनें पाढकी जडका औषधिमें अनुभव लेकर यह बात मालूम की है कि इसमें मूत्ररेचक

अथवा मूत्रशोधक गुण बहुत अच्छा है. डॉक्टर वॅट साहेबनें एक स्थलमें लिखा है कि सॉथल प्रांतके आदमी परिणामशूल (जिसमें अन्न पचनेंकेसाथ पेटमें दरद होता है और जिस कदर पेट खाली होता जाता है उसी कदर दरद बढता जाता है, अथवा भोजनके पश्चात कै होकर पेटमें दरद होने लगता है) विदग्ध-अजीर्ण और दस्तोंपर पाढकी जडका काथ देते हैं. और उससे अच्छा लाभ होता है. स्त्रियोंके गर्भाशयसंबंधी रोगोंमेंभी यह अच्छा गुणकारक है.

औपधिमयोग-(१) मूत्रपिंड और **मूत्राशयके पुराने दाह और क्षतपर, पुराने रक्तातिसारपर**, (खूनी दस्तोंपर) **मूत्राश्मरी** (पथरी,) **पेचिश** मरोड, और **अतिसार** इन विकारोंपर-पाढकी जडका काथ सेवन करनेसे आराम होता है. **(२) गलेके रोगपर**-पाढकी जड, अतीस, देवदार, इन्द्रजौ, कुटकी और नागरमोथा इनका काथ थोडा शहद अथवा गायका मूत्र मिलाकर पिलावे. **(३) पाठादितैल-पीनसरोगपर**-(नाकमेंसे पीप निकलती है, दुर्गंधि आती है, और नाककी गंधशक्ति नष्ट हो जाती है उसे पीनस कहते हैं. Ozoena) पाढकी जड, हल्दी, दारुहल्दी, चूर्णहार (मुर्हरी), पीपर, चमेलीकी पत्ती और दंतीकी जड यह सब चीजें बराबरकी लेकर सिलपर महीन पीस डाले. फिर उससे चौगुणा तिल्लीका तेल और तेलके चौगुणा पानी मिलाकर उसमें वह दवाइयोंका कल्क छोडकर खूब पचावे. जब तेल शेष रह जाय तब नीचे उतार छानले; और दिनमें दो तीन बार उसको नाकमें छोडता जाय. इससे कैसाही जबरदस्त पीनस क्यों न हो आराम हो जावेगा. **(४) शीतज्वरपर** -(जाडा लगकर बुखार आता है उसपर) पाढकी जडका काथ काली मिर्चका चूर्ण मिलाकर पिलावे. **(५) अतिसार** और **दाहपर**-पाढकी जड अथवा आमके वृक्षकी अंदरकी छाल दहींके साथ पीसकर देवे. **(६) शीतमेहपर**-[ठंढी सूजाक] पाढकी जड और गोखरूका काथ पिलावे. **(७) सूजनपर**-पाढकी जड गरम जलमें घिसकर पीना और सूजनपरभी

औषधिप्रयोग. (१) **विच्छूके काटेपर**–चिरचेरीकी डाली अथवा जड पानीमें घिसकर काटे हुए स्थानपर लगावे. अथवा चिरचिरेकी जड पानीमें घिसकर वह पानीमें घोलकर बिच्छू काटे हुए आदमीको थोडाथोडा पिलाता रहे. जब उस आदमीको वह पानी कडुवा लगेगा तब जहर उतर गया ऐसा समझले. (२) **चूहेके विषपर**-चिरचिरेकी कोमल डालीका रस निकालकर शहदकेसाथ सात दिनतक देवे, अथवा चिरचिरेका बीज पीसकर शहदकेसाथ चटावे. (३) **बौरेकुत्तेके काटेपर**–चिराचिरेकीजड १ तोलाभर कूट पीसकर शहदकेसाथ देवे. और घीकुवारका पत्ता और सेंधानमक काटेहुए जगहपर बांधदे. ३ दिनमें जहर उतर जाता है. (४) **दांतकी पीडापर**–चिरचिरेकी पत्तीका रस निकाल-कर दांतोंको मंजन करना. (५) **कर्णनाद और बहिरापनकेलिये** चिराचिरेके क्षारका जल और चिरचिरेका कल्क दोनोंमिलाकर तिल्लीका तेल पचाकर वह कानमें डालनेसे पूर्वोक्त विकार मिट जाते हैं. (६) **आंख आई हो तो**–चिरचिरेकी जडका चूर्ण और किञ्चित् सेंधानमक मिला-कर तांबेके बरतनमें दहीके ऊपरके पानीमें खरल कर अंजन करे. (७) **आंखकी फूली काटनेके लिये**–चिरचिरेकी जड शहदमें घिसकर अंजन करे. (८) **रतोंधीपर**–सन्ध्याके भोजनके अनंतर जब सोनेलगे तब चिर-चिरेकी जडी अंदाजसे एक तोला चबाकर सो जाय. इसप्रकार तीन दिन करनेसे आराम होगा. (९) **पित्तविकारपर**–चिरचिरेका बीज रात्रिमें मट्ठेमें भिगोकर प्रातःकाल उसीमें पीसकर पिलावे. इससे या तो पित्त गिरेगा-अथवा शमन हो जावेगा. इसपर पथ्य-घी और भात. (१०) **कफविका-रपर**–चिरचिरेका पचांग (छाल, पत्ते, फूल, फल और जड) लाकर जलाकर उसकी राख करके १ से २ मासेतक शहदमें चटानेसे कफविकार नष्ट होते हैं. यही राख पानीमें मिलाकर थोडा गुड डालकर देनेसे जलोदर (इस्तिस्का) और शरीरकी सूजन नष्ट होती है. (११) **चातुर्थिकज्वरपर**–(चौथय्या बुखार) बुखारके आने हुए सूर्य रविवारकेदिन चिरचिरेकी जड रोगीके

हाथमें बांधे. (१२) रक्तार्श-(खूनी बवासीर) पर-चिरचिरेके बीज चांवलके धोवनमें पीसकर पिये. (१३) माथेके रोगपर-चिरचिरेके बीजोंकी दूधमें खीर बनाकर खावे. इस खीरके खानेसे कुछ दिनतक भूख मंद रहती है. (१४) पेचिश अथवा आंव पीडा आदिपर-चिरचिरेकी जड पानीमें घिसकर पिलावे. अथवा बीजका कल्क चांवलोंके धोवनमें घोलकर पिलावे. (१५) कांवररोगपर-चिरचिरेकी जडी मठेमें घिसकर पिलावे. (१६) पुष्पावरोधपर-(स्त्रियोंका मासिकरजोदर्शन रुकनेपर) चिरचिरेकी जडी योनिमें रखनेसे पुष्पावरोध और योनिशूल नष्ट होते. हैं. (१७) किलासकुष्ठपर-(सफेद कोढ) चिरचिरेके क्षारके पानीमें मालकांगुनीका तेल पचाकर वह लगानेसे किलासकुष्ठ जाता रहता है. (१८) उपदंश (आतशक) पर-चिरचिरेका पौधा उखाड लावे और उसकी जटी काटकर बाकी अंगोंका रस ४ तोले निकालकर उसमें ९ माशे जीरा पीसकर डाले और पिलावे. इसप्रकार यह सात दिनतक सेवन करे. तबतक किसीचीजमें निमक न खाय. आठवें दिन वेरके अगर ओडहुल (जबा) केपत्तोंका रस पिलावे; इससे दाह शमन होगा. (१९) पेटकेदर्दपर-चिरचिरेके ४।५ पत्ते चबाकर खाजाय अथवा पत्तोंका रस पिलावे. (२०) शीघ्र औरसुखप्रसूतिके लिये-जब रविवारको पुष्यनक्षत्र हो उसदिन स्नान करके चिरचिरेकी जड उखाड ले आवे. और यह अंतरिक्षमें लटका रखे. स्त्रीको प्रसूतिके समय-यदि कष्ट होने लगे तो यह जटी उसके केशको बांध रखनेसे स्त्रीसुखसे और जल्दी प्रसूत हो जाती है. प्रसूतिके पश्चात् यह जडी तुरंत निकालकर बहते पानीमें छोडदे. इसमें देर होनेसे गर्भाशय बाहर निकल आनेका भय रहता है. अथवा सफेद चिरचिरेकी जड कमरको बांध रखे. इससेभी पूर्वोक्त गुण होता है. (२१) कण्ठकुब्जसन्निपातपर (जिसमें सिरदर्द, कण्ठग्रह, दाह, मूर्च्छा, ज्वर, कंप, बकना, हनुग्रह इत्यादि विकार होते है.)-चिरचिरेका बिना पानी डाले निकाला हुआ रस और पीपरका चूर्ण इनकी नास देवे. (२२) खांसीपर-चिरचिरेका चूर्ण ६ माशे और काली मिर्च

६ मासे मिलाकर शहदमें चटावे. (२३) कफज्वरपर–चिरचिरेके पञ्चांगका क्वाथ ३ मासे शहद डालकर पिलावे. (२४) चातुर्थिकज्वरपर–रविवारके दिन चिरचिरेकी पत्ती लाकर पीसकर उसकी गुडमें गोलिए बना रखे. ज्वर आनेपूर्वे एक गोली खाय. (२५) नासार्श (जिसमें नाकमें बवासीरकेसे मासांकुर निकलते है) पर–चिरचिरेके बीज, सेंधानिमक और चूल्हेपर धूंएसे बना हुआ काजलका–जाला, यह चीजें डालकर तिलीका तेल परिपक्व करके छान ले और नाकमें डालता रहे. (२६) जलोदरपर (जिसमे पेटमे पानी जमता है) चिरचिरेके (हरे) पोधेका, पत्ते और जड छोडकर शेष भाग ५ तोले लेकर उसको ७५ तोले पानीमें पचावे. जब ५० तोले शेष रहजाय तब उतारकर छानले और प्रत्येक बार ५ तोलेके हिसाबसे पिलावे. यह प्रयोग जलोदरपर बहुत गुणकारी है. मद्रासके प्रसिद्ध डॉक्टर कार्निशने इसे अजमाया हुआ है. (२७) अपामार्गक्षार–चिरचिरेके पोधे लाकर सुखावे. फिरउसको जलाकर राख करके एकमिट्टीके घडेमें डालकर चौगुने पानीमें अच्छीतरह घोल दे. इसी तरह उस घटेमें वह रातभर रहने दे और प्रात काल ऊपरका स्वच्छ जल लोहेकी कढाईमें निकालकर अग्निपर रखे और मीठी आंचपर सब पानी औटाडाले. फिर कढाईके तलमें सफेद रंगका क्षार जमा हुआ होगा उसे निकाललें. सब क्षारवृक्षोंके क्षार निकालनेकी यही विधि है. (२८) तिल्लीपर चिरचिरेका क्षार गुडमें मिलाकर खावे. (२९) शर्करा (रमल) पर–(Calculus) चिरचिरेका क्षार गोखरूके अथवा पाढकी जडके क्वाथमेंसे पिलावे. (३०) व्रणभरनेके लिये चिरचिरेका क्षार जलमदर ....

३ कचला.

स कारस्कर म. काजरा,
कुचला
स शाकिपर्णी म रानगाजा

मला० कानिरम, ब्रह्मी० सार्वो. फारसी० अजेरकी अरबी–जौझेलमधेल,
इं० Poison nut पाइझननट. ला Strychnos nux vomica स्ट्रिक्नास नक्सवॉमिका

वर्णन–भारतवर्षमें इस वृक्षकी जो सात जाति मिलती है वह और किसी देशमें नहीं होती. थोडे दिनोंपर आफ्रिकामें एक जात मिली है. कोचीन चायना और फिलिपैन टापूमें इसी उद्भजवर्गकी एक जाति पैदा होती है. उसको अंग्रेजोने Strychnos Ignatius amara 'स्ट्रिक्नोस इग्नेशस अमरा' यह नाम दिया है चीनकी भाषामें उसे होगनांग कहते हैं इसजातिमेंसे 'पपीता' नामका बीज निकलता है. पपीता यह मॅले (Malay) भाषाका नाम है यह बीज कुछ लंबासा, त्रिकोणाकृति, फीके लाल रंगका और लंबाईमें लगभग एक इंच होता है. इस बीजके गुण उसदेशमें प्रथम जेजुइट लोगोंको मालूम हुए, फिर उन्होंने वह यूरोपके लोगोंको बताये. और उसको अपने गुरु 'सेंट इग्नेशस' का नाम दिया. कुचलेके बीजोंमेंसे जो स्ट्रिकनीन और ब्रूसिया नामक दो सत निकलते हैं वही इन बीजोंमेंसे निकलते हैं. उसीतरह कुचलेके निष्कर्षके भांति इन बीजोंकाभी निष्कर्ष बनाया जा सकता है. पक्षाघात (फालिज) रोगमें शरीरके अचेतन—रहगये हुए अवयवोंको आकुंचन–प्रसारण शक्ति उत्पन्न करनेमें इसका बहुत अच्छा उपयोग होता है. यह बीज बहुत कडवा होता है. काले धतूरके साथ मिलाकर देनेसे महामारी (हैजा) के दस्त और पिंडरियोंकी एंठण बंद होकर शरीरमें उष्णता आती है. बडोदा राज्यके प्रधान सरकारी डॉक्टर सुलेमानी काला खजूर, दर्याई नारियलका मगज और सफेद रईके जडकी सूखी छालका चूर्ण इन बीजोंको मिलाकर पपीतेके चूर्णकी पुराने गुडमें या मधमें चार चार मासे वजनकी गोलियें बनाकर पिछली हैजेकी बीमारीमें रोगीकी नाडी जबतक चलती थी तबतक बराबर देते रहते थे और इनसे बहुत कुछ लाभ होता था ऐसा हमारे मित्र डॉ० मत्रीसे मालूम हुआ.

कुचलेके वृक्ष दक्षिणमें गोवा और मलबार प्रांतोंमें बहुत होते हैं ये

मालमें यह क्वचित् होता है. बर्नईकेपास साष्टी टापूमेंभी कहीं कहीं दीखनेमें आता है. यह लगभग ४० से ६० फूटतक ऊंचा होता है. इसके पेटका घेर १२ फूटतक होता है. डालियें बहुत विस्तृत, टेढी-मेढी, मजबूत होती हैं. छाल राखके रंगकी, स्पर्शमें चिकनी, और स्वादमें कडवी होती है. नई डालियें ग्रंथियुक्त और जुडी हुईसी मालूम होती हैं. नये पत्तोंके अकुर चमकदार, हरे और कुछ सुरखी लिये हुए रहते हैं. पत्ते बराबरमें (जोडमें) आते हैं. इनकी पर्णकलिका कठिण होती है. डंठल छोटे होते हैं. पत्ते चमकते हुए, चिकने और कुछ मोटे होते हैं. पत्तोंकी किनार समग्र एकसी होती है. यानी कहीं कटी हुई, कहीं कतरी हुई इसप्रकार नहीं होती. पत्ते चौडे, अंडाकृति, किसीकदर पानके पत्ते जैसे, नोकदार, ३ इंच से पांच इंच लंबे, और १॥ से ६ इंच चौडे होते हैं. उनपर ३।४ या ५ मोटी रेषा होती हैं. डालीके अग्रभागमें फूलोंके गुच्छ आते हैं. फूल अव्यवस्थित माजि-रीके सदृश, हरापन लिये हुए सफेद रंगके होते हैं. दीखनेमें लौंगकेसे दीखते हैं. फूलोंकी अन्तर्वेटिका पांच पंखडियोंकी, पचगा विभक्त, नीचे मिली हुई होती है और उसके गलेकेपास केसर पांचों पंखडियोंसे मिला हुआ होता है. स्त्री जातिका केसर अंतर्वेटिकाके बराबर लंबा होता है और उसपर सूक्ष्म रोए होती हैं. उसके अग्रमें दोभागोंमें विभक्त योनिमुख होता है कुचले का फल इंद्रायणके फलके सदृश, स्पर्शमें चिकना, मुलायम, गोल, नरंगी रंगका होता है. यह देखनेमें सुंदर होता है. इसीसे इस वृक्षको 'रम्यफल' यह अन्वर्थक नाम दिया हुआ है. फलका छिलका पतला होता है और वह फोडनेपर अंदरसे सफेद-पीले रंगका गूदा निकलता है गूदेके भीतरसे दोसे पांचतक बीज निकलते हैं. यह दोनों ओरसे चपटे, टूटनेको कठिण और फीके या कुछ कुछ पीले-धूसररंगके होते हैं. उनका व्यास (बीचमेंकी लंबाई diameter) ¾ इंचसे १ इंचतक होता है. यह बहुत कडुवे, जहरीले होते हैं. इनमें किसी प्रकारका गंध नहीं होता. इन्होंको जहरकुचला कहते हैं. कुचलेके वृक्षका उपयोगी भाग उसमें बीज और छाल है. इसके पत्तेभी जहरी होते

है. उनपर धरीहुई कोई चीज खानेसेभी जहर चढजाता है. गौ-भैंस आदि जानवर कहीं भूलसे इनको विशेषतासे खाजांय तो उनको जहर चढकर मृत्यु होती है. अंग्रेजी उद्भिज्जशास्त्रियोंने वनस्पतियोंके जो वर्ग किये हैं उनमेंसे Loganiaceæ 'लोगेनियेसी' नामक वर्गमें कुचलेका अन्तर्भाव होता है.

कुचलेका बीज चबानेसे बहुतही कडुवा लगता है. उसमें एक क्षार धर्मी (alkaloid) सत्त (extract) रहता है. जिसको अंग्रेजीमें strychnia स्ट्रिकनीन कहते हैं. उसीके सबबसे यह कडुवापन रहता है. यह स्ट्रिकनीन सत्त वडाभारी जहरी है. (इसके सिवाय औरभी एक ब्रूसीन नामका सत्त—फी सैंकडा १२ से १—इस प्रमाणमें इसमेंसे निकलता है.) स्ट्रिकनीनका असर ऐच्छिकगतीकी रगोंपर और मज्जाजालके ऊपर इसतरह जल्दीसे होता है कि उससे हाथ और पैरोंकी रगें अकड जाती हैं और शरीरकी हालत धनुस्तम्भकी (tetanus) सी होजाती है. कुचलेके बीजोंकी बुकणी करके वह मद्यके तीव्र अर्कमें (rectified spirit) पचाकर उसकी रासायनिक क्रियासे परीक्षा करनेपर उसमेंसे सैंकडा पांच टके सत्त लोगेनीन और शर्करावत् glucoside मिलते हैं. स्ट्रिकनिया के जहरका असर शरीरमें प्रथम रक्तके द्वारा होकर मस्तिष्कके तंतु और वंशगत मज्जातंतु (spinal nerves) इनको तीव्र चेतना उत्पन्न होती है. उससे प्रथम ऐच्छिक गतीकी रगोंकी खिचावट होकर वह रुक जाती है. और उसके बाद एकबारगी हृदयकी गति बंद होजाती है. (Failure of heart's action) अर्थात् मृत्यु होजाती है.

स्ट्रिकनिया (कुचलेका सत्त) आधा ग्रेन यानी पाव रत्ती कमसे कम देनेसे मृत्यु होता है. पेटमें जानेकेबाद २० मिनिटके अंदर आदमी मरे हुवे देखनेमें आते हैं. 'शेपके' नामके एक जर्मन डॉक्टरनें जर्मनीके एक अस्पतालमें ९ ग्रेनतक स्ट्रिकनिया खाकर बचे हुए कई आदमी देखे थे ऐसा डॉक्टर वूड लिखते है. परंतु इसपर हम अनुमान करते हैं. कि उन आदमियोंने ऊपरसे कुछ इसप्रकारके फल खालिये होंगे कि जिनकी

बजेसे जहरका असर खूनपर नहीं होने पाया. डॉक्टरीमें कुचलेका मद्यार्क (Liqe Strychnia) पांचसे दसबूंदेंतक दिया जाता है.

स्ट्रिकनिया अर्क बनानेकी कृति ब्रिटिशफार्माकोपिया में इसप्रकार लिखी है. एक औंस यानी ढाई तोले तीव्र मद्यार्कमें चार ग्रेन स्ट्रिकनिया मिलाकर वह ब्लॉटिंग पेपरमेंसे छानले. इसकी मात्रा तीनसे दस बूंदेंतक है. शुद्धकिये हुऐ बीजोंकी बुकनी १ से ५ ग्रेन अथवा २ से २॥ रत्ती रोगके अनुसार अनुपानभेदसे देवे. बहुत अल्प मात्रा यानी एक ग्रेनका सोलवा हिस्सा कुचलेका सत्त देनेसे वह हृदयको उत्तेजक (Stimulant) और सूक्ष्म वाहिनी नसोंका स्तंभन करता है. कुचलेका जहरी सत्त्व वृक्षकी छालसे बीजमें दुगना रहता है. और फलके गूदेमें तो बहुतही कम होता है.

गुण—मादक, कसैला, ग्राहक, चरपरा, कडुवा, हलका, गरम, और कोढ खूनबिगडनेसे होनेवाले रोग, खुजली, कफ, वादीके रोग, व्रण, ववासीर और ज्वर इनको मेटनेवाला है. इसका कच्चा फल—ग्राहक, कसैला, वादी, हलका और ठंढा है. पका हुआ फल—जहर, भारी, पाकके समय मीठा, और कफ वायु—प्रमेह, पित्त और रक्तविकार इनको मेटता है. षढत्व (नपुंसकत्व,) पक्षवध (फालिज) गुदभ्रंश (कांचका निकलना) इनपर तथा पुराने अतिसार के कारण कोष्ठ या आंतडी बिगड जाती है उसको शक्ति देनेकेलिये कुचला बडाभारी गुणकारी है इससे क्षुधा लगती है, थोडा पसीना आता है. खुलकर पेशाब होती है, और शिस्नकी रगें बहुत कडी होजाती हैं. इसीलिये बहुत देरतक संभोग (इमसाक) चाहनेवाले इसका सेवन करते हैं वीर्यकी कमजोरीपर यह एक अपूर्व औषधि है आर्यवैद्यक, डॉक्टरी, होमियोपाथी सबको कुचलेके यह गुण मान्य हैं. ज्वर, अजीर्ण, दमा, खांसी, वादी, क्षय, मस्तकरोग आदि अनेक रोगोंपर अलग अलग प्रकारसे इसका उपयोग होता है. युरोपियन डॉक्टर इसके बीज दो ड्राम कुचलकर १२ औंस उबलते हुए पानीमें डालकर उस बर्तनके मूंहपर ढकना लगाकर एक घंटेतक रख देते हैं, और इस फांटको प्रतिबार ½ से १ औंसतक इसप्रकारसे दिनमें तीनबार देते हैं

बीजकी शुद्धि-बीजको घीमें, जलने न पावे, इसतरह कटाईमें वा तावे-पर भूनकर ऊपरका छिल्का निकाल डाले और बीजके बीचोबीच दो भाग करके अंदरकी जिभली निकाल टाले तबबीज शुद्ध हुआ ऐसा जानले. अथवा बीज गोमूत्रमें उबालकर उपरका छिल्का और अंदरकी जिभली निकाल डाले.

स **औषधिप्रयोग**-(१)**आदमीको वा गाय भैंस आदिको जहरी जानवर काटनेपर**-कुचलेका बीज वा जड पानीमें घिसकर लगावे. (२) **पागल कुत्तेके काटनेपर**-शुद्ध किया हुआ बीज प्रतिदिन वृद्धिक्रमसे सेवन करे अथवा प्रतिदिन मशाल बराबर बीज खालिया करे. (३) **शरीरमें वादीसे सनक मारती हो उसपर**-कुचलेका बीज घिसकर लगावे. (४) **वदपर** (Bubo) कुचलेका बीज और समुद्रफल घिसकर लगावे. (५) **जाडाबुखार और प्रसूतिकारोगपर**-शोधे हुए बीजका चूर्ण १ या २ रत्ती, शहद मिलाकर चटावे. (६) **नारूपर**-कुचलेका बीज या बीज और संखिया पानीमें घिसकर तीन दिनतक लेप करे. (७) **शीतज्वर,-आंव-मरो संग्रहणीपर**-शुद्ध कुचला ३ भाग, लौंग १ भाग इनको लेकर अद्रक रसमें घोटकर रत्तीकेबराबर गोलियें बनारखे और प्रतिवार एक गोली शहद मिलाकर देवे. (८) **शूलके ऊपर** -कुचलेके बीजका पाताल यनसे निकालकर वह पानको कथ्थेके भाति लगाकर बीडा बनाकर खावे. (९ **अजीर्ण** (Dyspepsia) **शूल, मन्दाग्नि** इनपर-शोधे हुएबीजकी बुकनी १ या २ रत्ती शहदमें मिलाकर चाट जाय. (१०) **आमवात,** (Rheumatism) **पक्षाघात** (Hemiphlegia फालिज) और **चूहेके विषपर**-कुचलेके पत्ते, सोंठ, और साभरका सींग इनको एकजगह पीसकर लेप करे. (११) **वातोदर वा शोथोदरपर**-(इसमें सब शरीर फूल जाता है सूजन प्रथम परसे शुरू होकर ऊपर मूहतक आती है वा मुखसे शुरू होकर पेरोंतक नीचे उतरती है) कुचलेके वृक्षपर वासींग * नामका एक

* बडे बडे वृक्षोंपर, उसीकी पेडमेंसे पैदा होनेवाले और उसीपर आजीविका करनेवाले जो पौधे होते हैं उन्हें बदाक कहते हैं. इन्हें इंग्लिशमें (orchids)

वंदाक होता है उसके टुकडोंका कुछर्थीके साथ क्वाथ बनाकर यह पिलावे.(१२) आंव, अतिसार, विषूचिका (कॉलेरा) पर—शुद्ध कुचला, अफीम और सफेद गोलमिर्च यह तीनों चीजें समभाग मिलाकर अदरकके रसमेंउसकी रत्ती भरकी गोलियें बनाकर एक एक गोली सोंठका चूर्ण और गुडके साथ मिलाकर खालेवे. (१३) आमवातपर—कुचलेके पत्ते पीसकर उसका लेप करे. (१४) घूस—चूहे घरमें बहुत होगये हों तो कुचलेका चूर्ण आटेमें मिलाकर वह घरमें ऐसी जगह रक्खे कि जहां चूये खाजाएं.

४ सरिवन. (सालपर्णी.)

संस्कृतनाम—शालिपर्णी, स्थिरा, सौम्या, त्रिपर्णी, पीवरी, गुहा, विदारि, गन्धा, दीर्घाङ्घ्री, दीर्घपत्रा, अंशुमती, सादला, सुदला, स्थिरा, छायपर्णी, सुपुत्रिका, कुमुदा, सोम्या, ध्रुवा, दीर्घमूला, सुपर्णिला, वातघ्नी, तन्वी, सुधा, वीनुकारिणी, शोफघ्नी, सुभगा, देवी, निश्चला, शैहिपर्णिका, सुमूला, सुरूपा, पत्रा, शुभपत्रिका, शालिदला, पीतनी, अतिगुहा, श्रीपर्णी, महाक्षीननिका, पर्णी, ध्रुवपर्णी, एकमूल, अस्तमती, शालानी, शाटिका, कीटविनाशिनी. म. रानगांजा, सालवण, डाय, गु. समेरवो. बं. शालपान (नी) क. मुरुधोने, मुरलेहोन्ने, काटगाजि. तं. शियाकुपना. औ. सारपाणि ला. Desmodium Gangeticum डेस्मोडियम् गैंजेटिकम्

वर्णन—यह एक ३–४ फूट ऊंचा पौधा होता है. कौंकण, बंगाल और मध्यप्रदेशमें यह आपसेआप होता है. यह बारह मास रहता है. गरमीके दिनोंमें जानवर इसके पत्ते खा जाते हैं. तथापि पौधा मरता नहीं इसके डंडीका घेर लगभग १ इंच होता है. इसके पत्ते बेलकेसे एकएक डंडीपर तीन तीन होते हैं. इसकी डंडी दो उगल लंबी होती है. पत्ते देखनेमें कुछकुछ पमारकेसे, दीर्घवर्तुल परंतु उनसे किंचित्कदर बडे होते हैं. इसके

बढ़ते हैं रास्ना आदि वंदाक जातिके ही हैं. बेल दूसरेवृक्षके सहारेसे चढती है. उसका पोषण पृथ्वीमेंसेही मिलता है. वंदाक वृक्षस्तंभमेंसेही निकलते हैं, और उसवृक्षके रसद्वारा निजपोषण करते है वासिंगके बंदाकमें, अखीके आकारका एकही पत्ता होता है और उसकेऊपर चित्रविचित्र रंगके चिह्न होते हैं.

सिवाय पमारके पत्ते जर्दी लिये हुए होते हैं. और सरिवनके कालापन लिये होते हैं. दो पत्रदंडोंके बीचमें लगभग २।३ इंच का अंतर होता है. पत्तोंकी पिछली बाजू राखके रंगकी होती है. प्रत्येक पत्रदंडकेपास पुष्पकोशके सदृश कुछ लाल रंगका पदार्थ रहता है. और उसके भीतर सफेद रंगका अंकुरके भांति कुछ भाग होता है. सरिवनको छोटे २ आसमानी रंगके फूल बारह मास आते रहते हैं. इसके अग्रभागमें फलियोंका लगभग १ बालिश्त ऊंचा गुच्छा लगता है. उसमें बहुत छोटीछोटी और चपटी ऐसीं सैंकडों फलियें होती हैं. प्रत्येक फलीकी लंबाई ½ से ¾ इंचतक और चौडाई १– १।। धागेके बराबर होती है. उसको ६ से ८ आठतक जोड होते हैं. सरिवनका विशेष उपयोगी भाग उसकी जड है.

दशमूलोंमें सरिवनकी जड आती है. सरिवन, पिठवन, कटेरी, बडीकटाई गोखरू, बेल, अरणी, अरलु (टेंटू), गंभारी और पाटली इनकी जडकी छालका दशमूलक्काथ होता है. इनमेंसे पहिले पांच वृक्षोंकी जडको लघुपंचमूल और दूसरे पांचोंको बृहत्पञ्चमूल संज्ञा है.

गुण—सरिवन भारी, गरम, धातुवर्धक, रसायन, स्वादु, वृष्य, और रसकालमें कडवी होती है. विषमज्वर, वायु, प्रमेह, बवासीर, सूजन, संताप, ज्वर, दमा, कृमि, त्रिदोष, शोष, कै, घाव, खांसी, और अतीसार इनको नष्ट करती है. **लघुपंचमूल**—स्वादु, कुछ गरम, हलका, ग्राहक, कडुवा, बलकर, धातुवर्धक और वातपित्त, पित्त, वायु, कफ, दमा, ज्वर, खांसी, पथरी, त्रिदोष, शूल, अरुचि और अग्निमांद्य इन विकारोंको नष्ट करता है. लघुपंचमूलका क्वाथ शीतज्वर, दमा और कफदोषजन्य रोगोंपर प्रशस्त है. बृहत्पञ्चमूल अग्निवर्धक, तीक्ष्ण, कसैला, मधुर, गरम, पाककालमें हलका और कडुवा है. मेदोवृद्धि (obesity) कफ, वायु, दमा ज्वर और दूषित श्वासे होनेवाले रोग इनको मेटता है. **दशमूल**—तन्द्रा, त्रिदोष, दमा, खांसी, ज्वर, सूजन, आनाहवायु, हिचकी, पीनस, पसलियोंका दर्द, सिरदर्द, अरुचि, पसीना, अपतंत्रकवायु, और अग्निमांद्य नष्ट करता है. रहरहकर आनेवाले रोग, मस्तकरोग आदिपर यह प्रशस्त है.

औषधि प्रयोग–(१) **दशमूलादिकाथ**–शूल, हृद्रोग और दमा इनपर पूर्वोक्त दशमूलका काढा बनाकर उसमें जौखार और सेंधा नमक मिलाकर पिलावे (२) **हृदयशूल, पृष्ठशूल** और **कटिशूलपर** दशमूलका काथ बनाकर सवेरे छानकर पिये और उन्ही शेष द्रव्योंका काथ - रात्रीको बनाय पिये. (३) **सूतिकारोगपर**–दशमूलके काथमें पीपरका चूर्ण मिलाकर पिये. (४) **मूढगर्भ** और **मृतगर्भ गिरनेकेलिये**–सरिवनकी जड पीसकर मूत्राशय और योनीपर लेप करे. (५) **मोह, तन्द्रा और सन्निपातज्वर** (सरसाम) इनपर–दशमूलकाथमें पीपरका चूर्ण मिलाकर पिलावे. (६) **वातगलगण्ड** (Goitre) पर–दशमूल पीसकर लेप करे. (७) **सन्निपातयोनिशूलपर**–दशमूल, बेलफल और धायके फूल इनका काथ बनाकर उसमें रईका मोटा फाया भिगोकर योनीमें रखदे. (८) **कानके दर्दपर**–बृहत्पञ्चमूल आठ उगल लम्बे लेकर उनके ऊपरसे रई लपेट दे और तिल्लीके तेलमें भिगो अग्नि लगाकर नीचेकी तरफ मूंह करके हाथमें पकड रक्खे. इनमेंसे जो तेल नीचे बर्तनमें गिरेगा वह कुछ गरम करके कानमें डालनेसे कानका दर्द तत्काल मिट जाता है. (९) **आधासीसीपर**–सरिवनका काथ बनाकर नाकमें छोडना. (१०) **मेदोरोगपर**–बृहत्पञ्चमूलका काढा शहद डालकर पिलावे. (११) **गर्भपात होनेपर उपचार**–लघुपंचमूलके काथमें पेया (पतला भात) पकाकर बिना घी डाले पिलावे. (१२) **गरम तेलसे जलकर घाव होजाय** उसपर–पुरानी सरिवन जलाकर उसकी राख पानीमें गाढी मिलाकर लेप दे. (१३) **पक्षाघातपर**–दशमूलका काथ हींग और सेंधानमक मिलाकर पिलावे. (१४) **धनुस्तंभपर**–दशमूलका काथ पिलावे और शरीरको सरसोंकातेल मालिशकरे. (१५) **जीर्णज्वर, दमा, खांसी, मस्तकशूल, पीठका दर्द, सुकामपर**–पञ्चमूलीक्षीर–लघुपंचमूल लाकर, थोडा कुचलकर, उससे अठगुना दूध, और दूधके चारगुना पानीमें उसको पचावे. सब पानी औटकर जब दूध शेष रहजाय तब छानकर पिलावे. सब प्रकारके जीर्णज्वरपर यह दवा उत्तम लाभ-

सं म. चित्रक.
सं. खसतिल. म. पोस्त, अफूदस.
१
G V LAD

डंठल लाल होते हैं और सफेदके सफेद होते हैं. बाकी सब अवयव दोनोंके समानहीं होते हैं. चीतेकी डंडीपर सूक्ष्म, रेषा होती हैं जिससे, वह कुछ एठी हुईसी दिखाई देती है. इसके फूल चमेलीके नाई होते हैं, इनके डंठल लम्बे होते हैं. उसके नीचेकी ओर पुष्पकोष होता है जिसपर छोटे छोटे रोए होते हैं. फूल गुच्छेदार लगते हैं. अंग्रेजोंमें तो किरमिज, धूसर, काले, पीले रंगके फूलोंकाभी उल्लेख पाया जाता है. परंतु यह जाति दुर्मिल है. लाल और सफेद चीता सब जगह मिलता है- दोनोंमेंसे औषधिगुण लाल चीतेमें अधिक हैं. काले चीतेके गुण इसतरह लिखे हुए हैं कि-इसके खानेसे बाल काले हो जाते हैं और गौ यदि इस पौधेको केवल सूंघ ले अथवा इसकी जड दूधमें डाली जाय तो दूधका रंग काला होजाता है. अंग्रेजीमें लाल चित्रकको Plumbago Rosea और सफेदको P. Zeylanica कहते हैं.

चीतेके हरे जडकी छाल पानीमें घिसकर या पीसकर शरीरपर लेप देनेसे वहाकी खाल जल जाती है. इस अग्निसदृशधर्मके कारण इसमें अनल, पावक, वह्नि आदि समस्त अग्नीके नाम अन्वर्थकतया पाये हैं. चीतेकी जडमें पलिस्तरकीसी दाहयुक्त सूजन और फोडे पैदा करनेका गुण है. डॉक्टर हॉर्सफील्ड लिखते हैं कि जावा टापूके आदमी चीतेकी जडको पलिस्तर (Blister) के काममें लाते हैं. डॉ. ओशॉनेसीनें बहुत तजुर्बेकेबाद सिद्धान्त किया था कि, डॉक्टर लोग ब्लिस्तर लगानेके लिये जिस क्याथ रायडिस नामक दवाका जो कि एक जातके मक्खियोंका अर्क है, उपयोग करते हैं उसकी जगह यदि चीतेकी जडका उपयोग किया जावे तो उसका गुण उतनाहीं अच्छा वरन किसी अशमें अधिकही होकर सिवाय 'क्याथ रायडिससे बहुत सस्ता पडेगा वह इसका उपयोग इस प्रकारसे करतेथे:— चीतेके (छालकी) बुकनीमें थोडा चावलका या गेहूका आटा मिलाकर पानीसे उसकी लुगदीसी बनाकर, जिस जगह पलिस्तर लगाना होता था उस जगह, उसको आधे घंटेतक लगा रखते और बाद निकाल लेते थे. तबसे बारह या अठारह घंटेमें उस जगह एक बडा और एकसारिखा फोडा निकल आता था.

इसकी जडमेंसे एक मुलायम और कुछ पीले रंगका सत्त निकलता है. जिसको अंग्रेजीमें डॉक्टर लोग प्लंबेजीन Plumbagine कहत हैं.वह ठंढे पानीमें कुछ कुछ पिगल जाता है.

गुण.–पाचक, चरपरा, गरम; सूजन और कफको नष्ट करनेवाला; वात, उदर, बवासीर, संग्रहणी, कृमि, खुजली इनको मेटनेवाला; अग्निदीपक, रूक्ष, रोचक, कुष्ट, खासी, यकृत्, आम, क्षय इनका नाश करनेवाला; रसायन, और त्रिदोषनाशक है. यह चरपरा होनेसे कफका नाश करता है; गरम होनेसे वादीको मेटता है और कडुआ होनेसे पित्तको हटाता है. चीतेके जडकी छाल पीसकर लेप देनेसे गुमडा—फोडा आदि शीघ्र पककर फूटता है. आतशकसे शरीरपर फोडे होते हैं और वह फूटकर चेट्टे पड जाते हैं उसपर और कोढपर चीतेकी सूखी जडका उपयोग दक्षिण भारतमें बहुत किया जाता है और वह बहुत अच्छा लाभदायक पाया जाता है. इसकी हरी जडसे दूधके भाति रस निकलता है वह अभिष्यन्द नामक नेत्र रोगमें (जिसको अंग्रेजीमें opthalmia कहते हैं और जिसमें आखोंका लाल होना, सूजन, उनमें जलन होना, खटकना, चुभना, मैल चुहना, इत्यादि लक्षण होते हैं.) उपयोगी है. इसकी जडका रस और कोंपल पीसकर जखमपर लगाया जाता है. कोढ, दाद आदि त्वचाके रोगोंपर इसके जडकी छाल अपूर्व गुणकारी है. सतत ज्वरमें भी इसकी जडका उपयोग अच्छा होता है. "डॉक्टर ओसवाल्डने" ज्वरपर इसको अजमाकर इसके ज्वरघ्न गुणोंके विषयमें अपनी अच्छी सम्मति दी है. इसमें पसीने लानेका गुणभी वडे जोरका है. चीतेमें दाहक धर्म रहनेके कारण इसकी जडको गर्भाशयमें प्रविष्ट कर रखनेसे गर्भपात हो जाता है. परतु साथ यह भी बात है कि 'यदि किसी कारणसे गर्भाशयमेंसे अत्यंत रक्तस्राव होता होतो वह इससे वद होजाता है. डॉ. उदयचद्र दत्तने इस प्रकारका स्वयं देखा हुआ एक उदाहरण अपने मटेरिया मेडिकामें लिखा है. एक विवाहिता स्त्रीका किसी स्वाभाविक कारणसे गर्भपात होकर उसके गर्भाशयसे अत्यत रक्त बहने

कारी है.(१६) कफ पांडु (Anaemia) ज्वर, अतिसार, सूजन, संग्रहणी, खांसी, अरुचि,कण्ठरोग और हृद्रोगपर–दशमूल और सोंठका काथ पिलावे. (१७) दमा, खांसी और पसलियोंके दर्दपर–दशमूलके काथमें एरंडकी जडका चूर्ण मिलाकर पिलावे. (१८)पेटका फूलना और दर्दपर–दशमूलके काथमें एरंडीका तेल, हींग और कालानिमक मिलाकर पिलावे. (१९) मूत्रकृच्छ्र (तकतीर उल्बौल, Dysuria) मूत्राश्मरी (Stone)पर–लघुपंचमूलका काथ पिलावे. (२०) वातकुण्डलिका, वाताष्ठीला, वात बस्ति आदि मूत्ररोगोंपर–दशमूलके काथमें शिलाजित और मिसरी मिलाकर पीना. (२१) वातोदर, सूजन, शूलपर—दशमूलके चूर्णमें एरंडी का तेल मिलाकर लेना (२२) आधासीसी, सूर्यावर्त और सिरके दर्दपर––दशमूलके काढेमें घी और सेंधानिमक मिलाकर नास लेना. (२३) उन्मादरोगपर (Insanity) दशमूलके काथमें घी मिलाकर पिलाना. (२४) घाव भरनेकेलिये––सरिवनकी हरी जड पीसकर घावपर बांधना.

९ चीता.

संस्कृतनाम— चित्रक, अग्नि, शार्दूल, चित्रपाठी, कुट, शिखी, कृशानु, दहन, व्याल, ज्योतिष्क, पालक, अनल, दारुण, वन्हि, पावक, ज्वलन, पाठी, द्वीपी, चित्राग, शूर, पाठीन, वल्लरी, हरि, हुताशन, अरुण, ज्योति, हुतभुक्, ज्वलन, शठ, ज्वाल, दीपसत्र, उपण **म.** चित्रक **गु** चित्रो. **बं.** चीता. **क.** चित्रमूल **तै.** चित्रमूलम् **ता.** कोदिवेलु **तु.** चोलडू चित्रमूल. **मला.** टपकोटुवेलि. **बर्मा**–किन्–खेन्–इन्. **फा.** बेखबरदा. **अ.** शितरज्ञ.

वर्णन—यह एक तीन चार फूट ऊंचा पौधा होता है. यह हिंदुस्थान भरमें सब जगह पैदा होता है. इसके पत्ते कहीं जोडमें, कहीं ऊपर नीचे, कहीं बेलपत्रके सदृश त्रिदल इस प्रकारसे अनियमित होते हैं. पत्रोंके डठल छोटे होते हैं. देहाती आदमी इसके पत्तोंकी शाक बनाकर खाते हैं. इसकी टेनियोंके मूलमें गाठें होती हैं. चीतेकी दो जाति हैं, सफेद और लाल. दोनोंके स्वरूपमें भेद इतनाही होता है कि लाल चीतेके फूल और, पत्रोंके

लगा. उसको अस्पतालमें ले गये. उससमय उसके बस्तिभागमें बडाभारी दरद होता था, योनिद्वारसे पीप बहतीथी और शरीरमें ज्वरभी बडे जोर का था. परीक्षा करनेसे देखा गया कि उसके योनिमार्गमें लाल चीतेकी जडका एक छोटासा टुकडा कपडेमें लपेटकर रखा हुआ था. पूछपाछ करनेपर मालूम हुआ कि गर्भपतन होनेके बाद जो रक्तस्राव होता था उसको रोकनेके लिये दाईनें यह चीतेकी जडी गर्भाशयके अदर डाल रक्खी थी. चीतेके यह गुण ध्यानमें रखनेलायक हैं, इससे कदाचित् अनर्थ होनेका संभव रहता है. डॉक्टर दत्तकी देखी हुई स्त्री यदि विधवा होती और उसनें किसी स्वाभाविक कारणसे होनेवाले योनिस्रावको रोकनेके लिये चीतेकी जड अदर रखी हुई होती तो उसे देखनेवालोंके चित्तमें अवश्य इस बातका संदेह हो जाता कि कहीं इस विधवानें गुप्तरीतिसे गर्भपात करनेके लिये तो इसका उपयोग नहीं किया था? तात्पर्य, ऐसे प्रसंगमें बडी सावधानीसे विचार करके निश्चय कर लेना चाहिये. लाल चीतेकी जडीका चूर्ण खा लेनेसेभी जीते अथवा मरे हुए गर्भका पतन होता है. चीतेकी जडकी अधिक मात्रा खा लेनेसे विषकासा असर होता है. इससे चीतेकी जहरी दवाओंमें गिनती की जाती है. चीता, वायविडंग और नागरमोथा इन तीन दवाओंकी समष्टीको त्रिमद कहते हैं. इनका उपयोग अनेक औषधोंमें भूख बढानेकेलिये, शरीरमें फुर्ति लानेके लिये, अजीर्ण, अपचन आदि मेटनेके लिये किया जाता है. बनासीरकी प्राय सब दवाइयोंमें चीतेका न्यूनाधिक व्यवहार किया जाता है अरबीमे इसका नाम शितरज है जो संस्कृतके 'चित्रक' इस नामका अपभ्रंश मालूम होता है. आर्यवैद्यकमें वर्णन किये हुए चीतेके गुण युनानी वैद्यककोभी सर्वथा मान्य हैं. हकीम लोग इसको कफविकार, तिल्लीका फूलना, गठिया, आदि रोगोंपर बहुत गुणकारी मानते हैं. इसके पाचक गर्भपातकारी गुणोंसेभी वह परिचित हैं दूध और सिरकेके साथमें अथवा जल, नमकके साथ चीतेका लेप बनाकर कोढ अथवा पुराने हठी लमोगोंमें, फोडे निकल आनेतक लगा रखे. गठिया आदि वात-

रोगोंमें १५ या २० मिनटतक यह लेप लगा रखे; फिर निकाल डाले. यह विधि एक यूनानी ग्रंथमें लिखी हुई है.

औषधिप्रयोग (१) चीतेकी जड, सेंधानिमक, हरड और पीपर चारों चीजें बराबरकी लेकर उनको कूट रखे और प्रतिवार ३से ६ माशेतक चूर्ण फाककर ऊपरसे गरम जलपिये. इससे अजीर्ण नष्ट होकर अग्नि प्रदीप्त होता है. (२) **वातव्याधीकेलिये**–चीतेकी जड इन्द्रजौ, पाढकी जड, कुटकी, अतीस और हरड इन छओं समभाग चीजोंका चूर्ण एक समयमें, ३।४ माशेके हिसाबसे सेवन करे. वादीके रोगोंपर यह प्रशस्त है. सुश्रुताचार्यनें इसको पड्धरणयोग कहा है. (३) **खाज, दाद, फोडा फुन्सीपर**–चीतेके जडकी छाल चटनीकीसी पीसकर मक्खनमें मिलावे और उसे एक थालीमें रखकर थाली टेढी करके धूपमें रख देवे. धूपकी आंचसे, उस मक्खनमेंसे नीचे की ओर बूंद बूंद घी टपका करेगा. उसे बोतलमें भर रक्खे और खाज, दाद फोडा फुन्सीपर लगावे. (४) **स्तन कान** या और किसी स्थानमें **सूजन और गिल्टी** उठ आवे तो–चीतेकी जड पानीमें घिसकर लेप करे (५) **सापके काटेपर**–चीतेकी जड, काले वेलका कद, और कटू मरकी जड इन तीनोंको एक जगह पानीमें घिसकर थोडी थोडी देरकेबाद करके तीनचार पिलावे. सपकटे आदमीको गोबरके ढेरमें बिठलाकर सिरपर ठंढे पानीकी धार छोडता रहे. इस उपायके करनेसे दो पहरमें विष उतर जायगा. तब आधासेर घी पिलावे. (६) **चूहेके विषपर**–चीतेकी जडका चूर्ण डालकर तिल्लीके तेलको चुरावे और तालूपर उस्तरेसे बारीक चीरा देकर उस जगह इस तेलका मर्दन करे. (७) **सबप्रकारके उदररोगपर**–चीतेकी जड और देवदार इन दोनोंका कल्क दूधमें घोलकर पिलावे. (८) **बदपर**–चीतेकी जड नीबूके रसमें घिसकर लगावे. (९) **खाज–फोडेपर**–चीतेकी हरी जडी कूटकर उसका रस निकालकर ताजे नारियलके (गोपरेके) दूध में मिलावे और दोनोंको मदाग्निपर चुराकर जो तेल निकले उसको फोडोंपर लगावे. (१०) **चित्र-**

कघृत—चीतेकी जडका क्वाथ तथा कल्क दोनों मिलाकर सिद्ध किया हुआ घृत गुल्म, सूजन, उदर, तिल्ली, दर्द, बवासीर और संग्रहणी इन रोगोंको नष्ट करता है. (११) **पांडुरोगपर**—चीतेकी जडको कूटकर उसके चूर्णको आवलेके रस अथवा क्वाथकी तीन भावना देकर इस चूर्णको रात्रीके समय गौके घीमें मिलाकर लेना (१२) **नाकमेंसे रक्त बहता हो तो**-चीतेकी जडका चूर्ण शहतमें मिलाकर लेना. (१३) **मंडलकुष्ठपर**—प्रथम चीतेकी जड घिसकर उसका लेप करे और पीछेसे उसे निकालकर निर्गुण्डीके बीज पीसकर उनका लेप लगावे. (१४) **प्रमेहमें पेशाबकेसमय तीव्र वेदना होती हो उसपर** चीतेकी जडका चूर्ण तिल्लीके तेलके साथ पीना; नींद आनेके लिये गुडमें; अजीर्ण, संग्रहणी, अतिसार इन रोगोंपर मठेके ऊपरके जलमें लेना (१५) **खुजलीपर**—चीतेकी जडका क्वाथ पीना (१६) **यकृत् औरप्लीहोदरपर**—चीतेका क्षार शहतमें लेना. क्षार निकालनेकी रीति पीछे चिरचिरेके वर्णनमें दी हुई है. (१७) **बवासीरपर** लेप-चीतेकी जड, सुहागी, हलदी और गुड चारों चीजें समभाग लेकर इकठ्ठी पीसकर बवासीरके मस्सोंपर लेप करे. (१८) **बवासीरपर**—चीतेके जडकी छाल पीसकर उसका एक कोरे घडेको भीतरसे लेप करके उस घडेमें रात्रीको दही जमाकर दूसरे दिन सबेरे उसका मठ्ठा बनाकर पिवे. इस प्रकारसे बराबर कुछ दिनतक करते रहनेसे बवासीर नष्ट हो जाती है.

६ खसखस.

संस्कृत—खसखस, सूक्ष्मबीज, सुबीज, सूक्ष्मतण्डुल, खसतिल, खसबीज, खाखसतिल. **म०** गु० क० खसखस **ब०** पोस्तदाना. **तै०** **ता०** गसगस, **तु०** कसकसे. **मला०** कशकश. **फा०** तुख्मे कोकनार. **अ०** हब्बुल् कोकनार. **इं.** Poppy seed- पॉपीसीड्स. **ला.** Papavar Somniferum पापॅवर सोम्निफेरम्.

(पोस्त) स. खसफल, खाखसफल, दस्तुफल, हिंदी-पोस्त, खसखस काफल पास्तका डोडा. म. पोस्त, अफूचे बोंड. **गु०** अफीणना डोडवा. **बं०** पोस्तढेंडि, खाकसी. **फा०** कोकनार. **अ०** अबुनाम. **इं.** Poppy Cap-ule पॉपी क्यापसुल.

(अफीम) स. अहिफेन, अफेन, निफेन, नागफेन, भुजगफेन, आफूक, खसफलक्षीर, पोस्तरस, पोस्तोद्भव. म० अफू (पृ). गु० अफीण. ब० आफिम्० क० अफीम, अफेन, तै० नालमडु फा० अफयून, तिर्याक. अ० लब्नुल खसखास. इं Opium ओपियम.

वर्णन–जिस पौधेसे अफीम पैदा होती है उसको खसखसका पौधा कहते है. यह लगभग ३–४ फूट ऊचा होता है. इसके पत्ते लंबे और अग्रभागकी ओर संकुचित होते जाते हैं. पत्तोंकी किनार ओडहुल्के पत्तोकीसी कतरी हुई होती है. पत्तोंका आकारभी साधारणतः ओडहुल्के पत्तोंके सदृशही होता है. इसकी कई जातिये है. इनपे लंबे डठलपर सुफेद, लाल और जामनी इन तीन रंगोके बडे सुंदर फूल आते हैं. खसखसका प्रफुल्लित खेत बडा रमणीय दिखाई देता है. इसके फलको पोस्त कहते हैं. पोस्तके डोडोंको नश्तरसे चीरनेपर अदरसे जो रस निकलता है वह सूखनेपर उसीको अफीम कहते हैं. फाल्गुनमासके लगभग पोस्तके डोडे पक्के होते हैं उससमय अफीम निकाली जाती है. सध्याको ३।४ बजेके अदाजसे जिससमय धूप तेज हो एक चार फलके नश्तरसे डोडोंपर नीचेसे ऊपरकी ओर सीधी चार लकीरें खींच जाती हैं. तबसे दूसरे दिन प्रातःकालतक उन छेदोंमेंसे दूध निकलकर जमा रहता है उसको सबेरे एक प्रकारके पतले लोहेके चमचसे जिसको कि सतरा कहते है, डोडोंपर से खुरच लेते हैं. प्रत्येक डोडेको इस प्रकारसे दो या तीन दिनके अतरसे सामान्यतः तीन या चार वेर छेदा जाता है. कुछ डोडे ऐसे होते है कि एकही छेदमें उनका सब रस निकल आता है. एवंच कुछ ऐसेभी होते हैं कि आठ आठ दसदस छेदतक उनमेंसे रस निकलता रहता है. अफीमकी खेती प्रायः सब देशी रजवाडोंमें और हिंदुस्थानके बहुतसे प्रांतोंमें होती है. पजाबमें तो हरेक जिलेमें अफीमकी खेती होती है. परतु वहाकी अफीम वहीं लग जाती है. देशान्तरोंमें भेजजाने लायक अधिक नहीं होती. सरकारी प्रबधसे अफीमके व्यवहारकेलिये हिंदुस्थानमें तीन प्रधान स्थान (केन्द्र) नियत हुए हैं. और

उस उस देशकी अफीम उस उस स्थानके नामसे प्रसिद्ध है. बंगाल बिहारकी "पटणा अफीम" युक्तप्रांतकी, "बनारसी अफीम" और मध्यभारत तथा राजपूतानेकी, "माल्वा अफीम". बनारसी अफीममें फी सैंकडा ७० भाग शुद्ध अफीम और ३० भाग जलका मिश्रण होता है. इसलिये बनारसी काश्तकार अफीमको जमा करके लातेही। एक मिट्टीके कढाईनुमा चौडे बरतनमें रखकर उस बरतनको एक ओर ऊंचा करके किसी चीजके सहारेसे रख देते हैं. इस रीतिसे अफीममें मिला हुआ जलका अंश टपककर नीचेकी ओर आता है. इसको पसेवा कहते हैं. यह काला कॉफीके (Coffee) रंगका होता है. सरकार इस पसेवेको ३। रु. सेरके हिसाबसे खरीद कर लेती है. बिहारी अफीममें फी सैंकडा ७५ अंश शुद्ध रखना होता है. इसलिये वहांके काश्तकार एक मट्टीके चौडे बर्तनके मूहपर कपडा बांधकर अशुद्ध अफीम उसपर डाल देते हैं. वह कापडा उसके द्रवांशको सोख लेता है. परंतु साथही कुछ अफीमभी उस-कपडेको चिपककर रह जाती है. इस कपडेको "कफा" कहते हैं. सरकार-की तरफसे यह कपडाभी उसको लगीहुई अफीमके हिसाबसे खरीद लिया जाता है. अफीम जिस समय निकालकर जमा की जाती है उससमय उसमें लगभग आधा हिस्सा द्रवद्रव्यका होता है. एक पौधेको एकबेर छेदनेसे लगभग १० ग्रेन अफीम निकलती है. अच्छा नीरोग पौधा होनेसे ९। से आठ बेरमें कुलमिलाकर अनुमान ७५ ग्रेन अफीम निकलती है.

खसखसके पौधेसे छ प्रकारके द्रव्य मिलते हैं. १ अफीम २ ऊपर वर्णन किया हुआ पसेवा ३ फूलोंकी पखडी जो पत्तोंके नामसे प्रसिद्ध है ४ सुखाई हुई कोमल पतली डांडियें तथा पत्तोंका किया हुआ चूर्ण. ५ पोस्त और ६ खसखसका दाना.

अफीममें पसेवा रहनेसे वह काली और पतली दीखती है, एवंच उसके गुणोंकोभी हानि पहुंचती है. अफीममें जो कई एक अत्यन्त निद्राजनक द्रव्य रहते हैं वह रात्रिके समय गिरनेवाले ओससे अथवा वातावरणके

अफीम एजन्सीकी अंग्रेजी परिभाषामें 'ट्रॅश' Trash कहते हैं. 'ट्रॅश' यानी निरुपयोगीसा भाग- यह 'ट्रश' बननेके लिये खसखसके पोधे सूख नेतक खेतमें खडे रखते हैं और सूखनेपर पत्ते और पतले डठल कूट डालते है. यह चूर्ण एकेक मनकी थैलियोंमें भरकर काश्तकार सब-एजन्सियोंमें बेचनेके लिये ले आते हैं. हरेक एजन्सीमें सालभरमें, १० से १५ हजार तकका 'ट्रॅश' खरीदा जाता है.

जो अफीम इसमें ऊपरोक्त पसेवा अधिक रहनेसे पतली और घटिया होती है इसको 'लेवा' कहते हैं. चीनमें भेजनेकेलिये अफीमकी जो टिकियें बनाई जाती हैं उनके तहोंको जोडनेके लिये उनके बीचमें इस 'लेवे' का उपयोग किया जाता है.

उद्भिजशास्त्रज्ञ विद्वानोंने खसखसकी सफेद, लाल और जामनी इसप्रकार तीन जाति निर्धारित की हैं. सफेद फूलके पोस्तके बीज सफेद होते हैं और लाल जातके पोस्तका बीज काला होता है. हिंदुस्थानमें विशेषकरके सफेद जाति ही अधिक उत्पन्न होती है. युक्तप्रांत और बंगालमें केवल सफेद खसखसकीही उत्पत्ति होती है लाल और जामनी रंगकी जातियोंसे सफेदजाति उन प्रांतोंकी जल वायुके अधिक अनुकूल है. पहिली दो जाति केवल मालवामें होती हैं ऐसा डॉ. वाट सिद्धांत करते हैं. हिमालयमेंभी यह लाल जाति होती हैं ऐसा एक ग्रंथकारका मत है.

स्कॉट साहबने खसखसके कई प्रकार लिखे हैं. उनमेंसे बंगाल एजन्सीके अन्तर्गत दस और मालवामें होनेवाले चार प्रकार विशेष ध्यान देने योग्य होनेसे उनका संक्षिप्त उल्लेख यहां किया जाता है. बंगालमें-

(१) " सफेद धेरी " इसकी पैदाइश सबसे अधिक होती है. इसके डोडे सफेद रंगके दीर्घ-वर्तुलाकार होते हैं और उनपर बारीक सफेद रजके समान कण होते हैं इस प्रकारमेंभी दो भेद हैं. एक जातिके डोडे ऊपरके डोडोंसे कुछ छोटे होते हैं बाकी आकार आदि उनके सदृशही होता है इस जातिमेंसे अफीम बहुत कम निकलती है. दूसरी जातके डोडोंका रंग कुछ हरा

होता है और उनपर बहुतही कम रजःकण होते हैं. इस जातिके डोडोंकी छाल वह पकनेसे पहलेही सूखकर काठके सदृश कठिन हो जाती है. इसमें इतनी थोडी अफीम होती है कि एकही घेरके चीरनेमें सब निकल आती है. पहिले जिस सफेद जातिका वर्णन किया है उसमेंसे इतनी अफीम निकलती है कि उसके डोडोंको ४ से ९ और कदाचित् इससे भी अधिक घेर छेदनी पडती है. इसकी अफीमभी बढिया होती है.

(२) "कालदन्थी" अथवा "काले डंठलवाली" जात. इसका पौधा बहुत छोटा होता है. इसकी पहचान यह है कि फूल गिर जानेके बाद और डोडा पकनेके पहले इसके डंठल और पुष्पदंड जामनी—काले रंगके हो जाते हैं. इसके डोडे छोटे १½ से २ इंच लंबे और १½–२ इंच घेरके होते हैं. इसमेंसे अफीम बहुत नहीं निकलती. और उसमेंभी इतर जातिकी अपेक्षा क्षार कम पाया जाता है.

(३) "मोनरिया" इसके डोडे बडे और गोलाकार होते हैं. (२ से २½ इंच लंबाई और घेर २½ से २½ इंच) अच्छे डोडोसे ९ घेरतक अफीम निकलती है. परंतु ऐसे कम होते है. प्राय ऐसेही होते हैं जिन्हें तीसरी या चौथी घेरसे अधिक चीरनेकी आवश्यकता नहीं होती.

(४) "तेलिया" अथवा "सबज घेरी" इसमेंसे सबसे अधिक अफीम निकलती है. परंतु इस जातिकी काश्त बहुत कम करते हैं. यह "सफेद घेरी" काही भेद है. और उससे सब तरह मिलता है. केवल इसके डोडोंका रंग सबज होता है. और "सफेद घेरी" के डोडोंपर जो सफेद रंगका चूर्ण होता है वह इसपे नहीं होता. चीनमें यह महंगी बिकती है.

(५) "कुटिल" अथवा "काटपट्टा" यह एक स्वतंत्र जाति है. इसके पत्तोंकी किनार कतरी हुई होती है. पौधा बडा और जोरका होता ह. बीचकी डंडीसे ऊपरकी ओर कुछ थोडीसी टैनियें निकल आती हैं. पत्ते मोटे होते हैं. उनका रंग—समुद्रका रंग दूरसे जैसा हरा दीखता है, उस प्रका-

(१०) "गुलनार सफेद" अथवा "सफेद महुआ" इसमें यह विशेषता है कि इसके पत्ते, डंठल, डोडे इन सबमें सफेद लकीरें और सफेदही दाग होते हैं. इसके डोडे घटे यानी दोनों ओरसे २½ इंच होते हैं परन्तु उस हिसाबसे अफीम कम निकलती है. तीन या चार बार चीरनेसे काम हो जाता है. यह जातिएं बंगाल एजेंसीकी हुई, अब नीचे मालवाकी ७ जातियोंका वर्णन किया जाता है.

(११) "लकरिया" इसका पौधा बडा जोरका होता है. इसका मसदंड ४-५ फूट सीधा होता है. डालियें दूर दूर होती हैं. पत्ते दीर्घ-वर्तुलाकार (अण्डाकृति) १२-१६ इंच लंबे ८-९ इंच चौडे होते हैं; किनार टेढी मेढी, अनियमित खण्डोंमें विभक्त, खरखरे दांतोंवाली होती है. पत्ते कागजकेसे पतले होते हैं. रंग फीका हरा; फूल बडे, सफेद रंगके और गुलाबी या सिन्दूरी रंगकी फटी हुई किनारवाले होते हैं. डोडोंकी ऊंचाई चौडाईसे अधिक होती है. यह २-२½ इंच लंबे और १½-२ इंच चौडे होते हैं. रंग हरे रंगकी कांच जैसा होता है. इस जातिकेभी कई भेद हैं.

(१२) "ढोला" पौधेकी ऊंचाई ३½-४ फूट. पत्ते मोटे और ९-१२ इंच लंबे ६-७ इंच चौडे; किनार किञ्चित् खंडविभक्त, दांतोंवाले; फूल बडे, सफेद और समग्र. डोडे लंबे, कुछ गुलाई लिये हुए २½-३ इंच लंबे, १½-२½ इंच चौडे, और रजःकणोंसे आच्छादित. इसीकी एक दूसरी जात "सब्जढोला" नामकी होती है, उसके डोडे गोल २½ इंच लंबे चौडे और रजःकणाच्छादनविहीन होते हैं.

(१३) "गंगाजली" यह जाति लगभग "लकरिया" जैसी ही होती है. कहीं कहीं इसके सफेद फूलोंकी पंखडियोंके किनारेपर गुलाबी रंगकी लकीर होती है और कहीं नहीं भी होती; इसके डोडे बडे होते हैं. उनपर हरी सीधी लकीरें और सफेद रजःकणोंका आच्छादन होता है.

(१४) "जगारया" ऊपरकी तीनों जातियोंमें इस जातका पौधा सबसे छोटा और पतला दुबला होता है. इसके फूलभी सबसे छोटे होते हैं.

फूलोंकी बैठक फीकि जामनी रंगकी और पंखडियोंकी किनार किरीमज और छोर इनके मिश्रित रंगकी होती है. इनके डोडे २-२½ ईंच लंबे-१½से २½ ईंच चौडे होते हैं और उनके दाने फीके जामनी-धूसर रंगके होते हैं.

बंगाल्में आधे अकतूबरसे आधे नोव्हेंबरतक खसखसकी बोयाई होती है. युक्त प्रांतमें जौनसरके पहाडमें फरवरीसे जूनतक फसलका मोसम समझा जाता है और अन्य सर्व जगह यह मोसम अकतूबरसे मार्चतक होता है.

खसखसकी खेतीकेलिये बकरे, और बकरीयोंके गोबरका खात बहुत अनुकूल होता है. खातकेलिये सनकाभी अच्छा उपयोग होता है. खसखसके डंठलोंकाभी खात अच्छा होगा परंतु लोग उनको ईंधन बनाते हैं. खलीमें एरंडीकी खली अच्छी है. राखकाखातभी बहुत श्रेष्ट है. परंतु उसमेंका क्षार नहीं जाने देना चाहिये. खनिज पदार्थोंमें शोरा अच्छा है. खसखसकी खेतीमें खातके संबंधमें एक विशेषता है. वह यह कि इसमें और और धान्योंके सदृश जमीनमें तो खात डालतेही हैं परंतु ऊपरसेभी यानी पत्ते और फूलोंकोभी एक प्रकारका खात दिया जाता है. इसका हेतु यह है कि यदि पेनोंको ऐसी चीजोंकी सहायता दी जावे कि जो वातावरणकी क्रियासें अधिक अफीम पैदा करें. (१) खली पहले पहल इसको लगावें. गौका सूखा गोबर चूरकर राखमें मिलाकर लगावें. (२) शोरा १ मन, चूना ४ मन, नोनीमिट्टी २० मन सब मिलाकर फूलोंकी कलियें निकल आतेही लगावें. (३) अथवा चूना ६ मन और कचे कोयलेकी भुकनी ३ मन मिलाकर ऊपरके नं० १ के खातकी जगह लगावे. (४) शोरा ४ मन, कचे कोयलेकी भुकनी ४ मन मिलाकर कलियें निकले उसकेबाद लगावे. (५) निमक २० सेर, शोरा १ मन और ४ मन चूना सब मिलाकर नंबर ४ की जगह उपयोग करे.

एक बीघा जमीनकी बोवाईकेलिये ३ सेर बीज लगता है. बोनेसे पेहले एक रात बीज पानीमें भिगो रखते हैं. कपूरके पानीमें भिगो रखनेमें चौबीस

दिन अंकुर निकलना शुरू होता है और छटे दिन तो वह अच्छे ख़ासे बढ जाते है. इसके सिवाय खसखसके क्षुपों होनेवाले कितनेही रोगोंका यह क्षुपोंमें भिगो रखना प्रतीकार करता है. अडूसेके काढेमें बीज भिगो रखकर बोनेसेभी उक्त प्रयोजन सिद्ध होता है. अफगानिस्तानमें शीघ्र अंकुरित होनेके लिये धानको अडूसेकेही काढेमें भिगोकर बोते है. सामान्यतः बीज बोनेके बाद एक सप्ताहमें अंकुरित होता है और उससे ७५ या ८० दिनमें फूल लगते हैं.

युरोपियन उद्भिज्जशास्त्रज्ञोंका मत है कि अफीमका वृक्ष असल हिंदुस्थानका नहीं है. किन्तु यूरोपसे इस देशमें लाया हुआ है. प्राचीन कालमें ग्रीस और रोममें इसको बागोंमें लगातेथे और वहांके लोग इन वृक्षोंसे अफीम निकालना जानते थे तथा उसके गुणोंसेभी परिचित थे. ग्रीक लोगोंसे अरबी लोगोंने इसके गुण जानकर प्रथम ईरानवालोंको बताये और फिर वहांसे हिंदुस्थान और चीनमें इसकी प्रसिद्धि हो गई. चीनके पुराने इतिहासोंसे मालूम होता है कि अरबी सौदागर अफीमके डोडे देकर बदलेमें चीनी माल खरीदते थे. उस समय चीनी भाषामें इसका नाम अरबीके 'अफयूनसे' बिगडकर 'यं-पीन' हुआ. डोडोंका आकारविशेष और उसके चीनीकेसे बीज देखकर चीनियोंने डोडोंका नाम "मी नँग" रखा जिसका अर्थ "चीनेका पात्र" ऐसा होता है. खसखसका नाम "यिंगसू" रखा था. जिसका अर्थ 'पात्र विशेषमें होनेवाले चीने' ऐसा होता है. उस समय चीनी डॉक्टर इन डोडोंसे नींद लानेवाला एक मवाके तथा और कई दवाइयें बनाते थे. संस्कृतके प्राचीन वैद्यक ग्रंथोंमें कहीं इसका नाम नहीं पाया जाता इससे यह क्षुप द्वीपान्तरसे मुसलमानोंने लाया हुआ है यह बात सिद्ध होती है. यह युरोपियन उद्भिज्जशास्त्रज्ञोंका मत है. परंतु उनके दिये हुए प्रमाणोंसे हम इस बातको अभ्रान्त सिद्धान्त नहीं मान सकते. खसखसके जातिके दो या तीन क्षुप काश्मीरके जंगलोंमें तथा उत्तर भारतके प्रदेशोंमें खुदबखुद और

इसका उल्लेख यहीं नहीं पाया जाता. सातवीं सदीमें बने हुए 'जेरुसलेम तालमूद' नामके ग्रंथमें पहले पहल 'अफयून' का निर्देश है. 'प्लिनी' ने पहिली सदीमें मिसरकी अफीमका निर्देश किया है. डॉक्टर बर्डवुड कहते हैं कि प्रसिद्ध 'इलियडके' रचयिता ग्रीक कवि होमरनें 'तिर्याक्' नामसे जिस पदार्थका वर्णन किया है और ईसवी सनकी पहिली सदीमें 'सेल्सस्' नामके ग्रीक वैद्यने "ल्याक्रिमा पपेव्हरिस" नाममें जिस चीजका वर्णन किया है वह अफीमही है. ईसवी सनके ८ वीं सदीमें आसीमकी खेती चालूमें होती थी इसका प्रमाण मिलता है. "चेट सँग ची" नामके ग्रंथकारनें अफीमके क्षुपका जो वर्णन किया है वह हिमालयपर होनेवाली जातीसे मिलता है. नीचेकी ओर सफेद और किनारोंपर जामनी या लाल रंगकी लकीर इस प्रकारके पुष्प इसपर होते है. इसी समयके एक चीनी कविने लिखा है कि "खसखसका क्षुप बतौर शाकके लोग खाते हैं. उसके बीज ज्वारके पैदा होनवाले चीने जैसे होते हैं, पीसनेपर उनमेंसे गाढे दूधकासा रस निकलता है और उसे उबालनेपर बुढ्ढे पीने लायक पेय बनता है" चीनके "जेन्-ट्-सग' नामक बादशाहकी आज्ञासे "सू सग" नामक वैद्यनें ई. स. १०५७ मे जो ग्रंथ छापकर प्रकाशित किया था उसमे लिखा है कि "खसखसके पौधे सर्वत्र होते हैं और बहुतसे आदमी उसके सुंदर फूलोंकेलिये लगाते हैं. इसकी सफेद फूलोंकी, और लाल फूलोंकी, इस प्रकार दो जातिए हैं. ग्यारवीं सदीमें तो इसकी खेती बहुत कसरतसे होती थी. इसके डोडोंमेंसे अफीम निकालनेकी बात पहले पहल १२ वीं सदीमें "लिन हग' नामके एक ग्रंथकारने लिखी है. "सीट् को नामके उसी समय लिखे हुए एक काव्यमे खसखसके सफेद फूलोंकी तरफकी उपमा दी हुई है. परन्तु उसके बीज काले होने है ऐसा लिखा है, इसमें कुछ विरोध आता है. क्यों कि सफेद फूलवाली जातिके बीज सफेद और लालवालीके काले ऐसा भेद प्राय देखनेमें आता है. चीनके वैद्योंनें और विशेषत "वंगशी" नामक वैद्यनें अपने "ई-चीन-कँग" नामक पुस्तकमें

पोस्तके डोडोंका "अर्तिसार, आव, पेचिश" मे लोकोत्तर गुण वर्णन किया है.

संस्कृतमें अफीमके जो अहिफेनादि नाम है वह अन्वर्थक है. अहिफेन अर्थात् सर्पका विष. सर्पके काटनेसे जिस प्रकारका असर शरीरपर होता है उसी प्रकारका असर अफीमकी अधिक मात्रा लेनेसे होता है. इसीसे अहिफेनके नागफेन, भुजंगफेनादि पर्यायभी हुए है.

खसखसके पोस्तसे निष्कर्ष, अवलेह और कषाय यह तीन प्रकारके कल्प होते है. डॉक्टर लोग निष्कर्ष इस प्रकारसे बनाते है. सूखे पोस्तका चूर्ण ४० तोले, १०० तोले (उनेहुए=distilled) उबलते पानीमें २४ घंटेतक भिगो रक्खे फिर "पर्कोलेटर" से वह दूसरे वर्तनमें छानकर औटावे. जब चुरकर ९० तोले पानी शेष रह जाय तब उतारकर ठंढ करके उसमें ९ तोले मद्यका अर्क मिलावे. यह मिश्रण कुछ देरतक ऐसाही रख छोडे. फिर छानकर अग्नीपर रखके गाढा निष्कर्ष होने तक औटावे. इस निष्कर्षसे अफीमकासा मलावष्टम्भ न होवे नींद आती है. युनानी हकीम लोग पुरानी खासीसे जब रोगी हैरान होता हो उससमय उसको शांत करनेके लिये इसका उपयोग करते है. इससे न सिरमें दर्द होता है न चक्कर आती है.

खसखसके दानोंका तेल निकलता है वह खानेके तथा चिरागमें वालनेके काम आता है. तेल निकालनेके बाद जो खली बचती है उसको गाय भैंस आदि चौपायोंको खिलाते है. बीज जितना ताजा होता है उतना अधिक तेल निकलता है. कभी बहुत अच्छा बीज मिलनेसे एक तिहाई तेल निकलता है. यह तेल धूपमें रखनेसे सफेद, पारदर्शी तथा किसी प्रकारकी रुचि विनाका होजाता है. इसको सिरपर मलनेसे नींद आती है और मगज पुष्ट होता है. रंगके काममेंभी यह बहुत उपयोगी है. सफेद रंगके साथ मिलानेसे बहुत सुंदर सफाईदार रंग बनता है. अरबमें खसखस रुपयेको दससेरके भावमे और तेल ३ सेरके हिसाबसे बिकता है. निग

डोडेमेंसे अफीम नहीं निकाली है, उनके भीतरकी खसखस कडवी और नशेली होती है. तथा उनका तेल निकालनेपर उसमेंभी यही दोष होते हैं. बंगाली खसखसका तेल मालवई खसखसके तेलकी अपेक्षा अच्छा होता है इससे खानेके काममें यही अधिक आता है. मालवई तेल विशेषतया बालनेके काममें लगाया जाता है. इस तेलका उपयोग मोमबत्ती, साबन आदि बनानेके काममेंभी अच्छा हो सकता है. यूरोपमें रोगनी रंग (Oilpaints) और विशेषतः चित्रकारीके काममें आनेवाले रंगोंमें (Artist's colours) अलसी तथा और २ तेलकी जगह इस तेलका उपयोग करते हैं. इसकी खली ताजी रहते समय बहुत मीठी और चौपायोंके लिये पौष्टिक होती है. पुरानी होनेपर इसपै बुरासा जमजाता है और स्वादमें कडवी होती है. उस दशामें खिलानेसे जानवरोंको थोडीबहुत हानिभी पहुंचाती है. खसखसकी खलीकी रासायनिक रचना ग्लासगोके प्रोफेसर अंडरसनने यों निर्णीत की है. सौ-भाग खलीमें पानी (९. ९६) तेल (११·०४) नैट्रोजनस द्रव्य (३४·०३) गोंद और तत्सदृश द्रव्य (२३·२९) राख (१३·७९) और शेष रद्दी (११·३६)

खसखसका पौधा—ग्राहक, बलकर, भारी, पुरुषत्व बढानेवाला, कफप्रद, पाककालमें मधुर, वीर्यवर्धक, कांति बढानेवाला और वात-पित्तनाशक है. **पोस्त**—रूक्ष, संग्राहक, और रक्तशोषक है. **पोस्तका छिलका**—ठंढा, हलका, कडुवा, संग्राही, कसैला, वादी, रोचक, सप्तधातु-शोषक, पुंस्त्वनाशक रूक्ष, मदकर, अग्निको बढानेवाला, और मोहोत्पादक है. **खसखस**—कफ करनेवाली, बलकारक, वृष्य, भारी, मीठी, संग्राही और वादीको हटानेवाली है. **अफीम**—जारण, मारण, धारण, सारण, इन चार प्रकारकी है. वह वृष्य, ताकतवर, संग्राही, समधातु-शोषक, वातपित्तकर, आनंदकारक, नशैली, वीर्यस्तंभक, कडवी, मधुर, तथा सन्निपात, कृमि, कफ, पांडु, क्षय, प्रमेह, दमा, खांसी, तिल्ली और वीर्यक्षय इन रोगोंको मिटानेवाली है. जो अफीम श्वेतवर्ण होकर अन्नको पचाती है उसे जारण कहते हैं. काले रंगकी मृत्यु-

कारक होती हैं उसे मारण कहते हैं. पीछे रगकी जरा यानी बुढापेको हटाने वाली है उसे धारण कहते हैं और चित्रवर्णकी मलका सारण करती है यानी दस्तावर होती है इसकारण उसे सारण कहते हैं.

अफीमकी प्राथमिक क्रिया उत्तेजक होती है और पीछेसे वह शरीरके अंदरकी तीव्र पीडा शमन करके नींद लाती है. जाडा बुखारकी कंपकपी (बंद) करनेमें अफीम बहुत उपयोगी है. इसके स्तंभक होनेके कारणसे पसीना, दस्त या साधारण, किसी प्रकारका स्राव बंद करनेके काममेंभी यह बहुत उपयोगी है. पेटके अंतरावरणके दाहमें (Peritonitis) यह बहुत गुणकारी है. बहुत बढे हुए ज्वरमें अफीम बहुत फायदा करती है. डॉक्टर लोग उसे कर्पूरादि दवाइयोंके साथ मिलाकर देते हैं उससे बीमारकी घबराहट कम होकर नींद आती है. पक्वाशयके अंदरका व्रण (Ulceration of the stomach) आंव, अतीसार, हैजा, रक्तप्रदर (menorrhagia) पीडितार्तव (dysmenorrhea) स्नायुसंकोचजन्य मूत्रकृच्छ्र (Spasmodic Stricture of the Urethra) आदि स्त्री पुरुषोंके मूत्रमार्गके रोगोंमें अफीम बहुतही गुणकारी है. धनुस्तंभ (Tetanus) और गठियामेंभी अफीम अच्छा लाभ पहुंचाती है. सिरदर्द, गठिया और अभिष्यन्द आदि नेत्ररोगोंमें अफीमका बाहरी उपयोगभी लाभदायक होता है.

अफीमसे चंडू और मदक यह दो नशैली पीनेकी चीजें बनती हैं. अफीमकी मात्रा ½ ग्रेनसे २ ग्रेनतक आदमीकी उमर, शक्ति, रोग आदि बातोंके विचारसे देना चाहिये

खसखसके औषधि प्रयोग–(१) आमातिसारपर–खसखस दहीमें पीसकर पिलावे (२) **बच्चोंको आंव गिरती हो तो**–खसखसका हलुआ, बनाकर खिलावे. (३) **जोडकी हड्डी लचक जानेपर**–पोस्तका कषाय बनाकर उसमें कपडा भिगो उससे दर्दकी जगहको सेंके (४) **पुष्टि और ताकतके लिये**–खसखस, बादाम, और चिरौंजी तीनों चीजें समभाग लेकर बारीक पीसकर गौके दूधमें उनकी खीर बनावे. जब औटकर तयार हो जावे

तब उसमें २ तोले ताजा घृत और २ तोले मिसरी मिलाकर चूल्हेपरसे नीचे उतार रखे और जब वह ठंढी होनेपर आवे तब उसमें २ माशे गिलोयका सत्त मिलाकर खाजावे. कुछ दिनतक इस खीरके सेवन करनेसे उत्तम प्रकारकी ताकत और पुष्टि आती है. कमजोर बालकोंके लिये भी यह एक उत्तम खाद्य है. (५) **दारुण रोगपर**–(porrigo of the scalp जिसमें सिरकी त्वचा कठिन होकर उसपै छोटी २ फुन्सिएं उठती हैं) खसखस दूधमें पीसकर सिरपर लेप लगावे. (६) **सूजन, पेटका फूलना तथा शरीरमें बादीसे सनक मारना इन रोगोंपर**–खसखसके फूल तथा पोस्त पानीमें उबालकर उस गरम पानीसे सेंके. (७) **बच्चोंके लिये शक्तिवर्धक भक्ष्य**–खसखस गौके दूधमें पीसकर उसमें और थोड़ा दूध और गुड या मिसरी मिलाय उसको पकाकर राबडी बनावे और ठंढी होनेपर खिलावे. यह भक्ष्य दो महीनेसे अधिक उमरके बच्चोंको देने योग्य है. विशेष करके जिन बच्चोंको दस्तोंकी बीमारी हो उनके लिये यह बहुत हितू है. (८) **पक्षाघातपर**–खसखसका तेल और नारियलका तेल एक जगह मिलाकर उसकी मालिश करे. (९) **बदपर**–प्रथम जोंकें लगाकर बिगडा हुआ खून निकलवा डाले और उस जगह नीमकी पत्ती पीसकर बांध देवे. दूसरे दिनसे पोस्तका काढा बनाकर उसमें कपडा भिगोकर तीन चार दिनतक सेंकता रहे. इससे दरद साफ मिट जावेगा. **अफीमके औ. प्र.** (१) **अतिसार और अजीर्णपर**–अफीम और केशर दोनों समभाग मिलाकर आधे गुजके बराबर गोली बनाकर शहतमें मिलाय लेवे. अथवा एक गुंज अफीम बकरीके दूधमें घोलकर पिलावे. (२) **प्रबल अजीर्णपर**–(Dyspepsia) खोबरेके टुकडेमे छेद करके उसमें २ गुंजके बराबर अफीम भरकर वह खोपरा अंगारपर रख जलाकर खिलावे. (३) **जुकाम–सरदीपर**–अफीम कुछ पतली करके एक कागजको लगाकर उसका चुरट बनाकर पीना. (४) **सिर दुखता हो तो**–अफीमका लेप लगावे. (५) **शरीर खजुआता हो तो**–तिलीका तेल, मोम और अफीम सब एक जगह मिलाकर मालिश

करे. (६) **अत्यंत पसीना आता हो तो**–किंचित अफीम खिलानेसे बंद हो जाताहै. (७) **वीर्यस्तंभनके लिये**–जायफलमें एक बडा छेद बनाकर उसमें अफीम भरके ऊपरसे मुंह बंदकर गूलर, बड अथवा बबूलके पेडमें छेद करके उसमें वह जायफल रखकर बाहरसे मूह बंद कर देवे. कुछ दिनोंके बाद वह अफीम निकालकर उसकी गोलियें बनाकर यथाशक्ति सेवन करे. अथवा चीनीके साथ अफीम खाकर ऊपरसे दूध पिये. अथवा पोस्त और सोंठका सोलवां हिस्सा कषाय बनाकर उसमें थोडा गुड डालकर वह पीना. (८) **पक्वातिसारपर**–मिश्रीके खप्परमें मीठी आंचपर अफीम भूनकर खानेसे कैसाही पक्वातिसार हो तत्काल बंद हो जाताहै. (९) **बालकोंकी सर्दी–जुखामपर**–सिरपर और नाकपर अफीमका लेप लगावे. पेटमें विकार हो तो उसपरभी लेप लगावे. (१०) **अतीसारपर**–प्याजके रसमें अफीम मिलाकर देवे. (११) **नारूपर**–सापकी केंचुल और अफीमकी टिकिया बनाकर चिपका देवे (१२) **नासूरपर**–आदमीके नाखून जलाकर उसकी राखमें २–२॥ रत्ती अफीम मिलाकर उसकी गोली बनाय नासूरकी जखममें भरदेवे. (१३) **आमातिसार, रक्तातिसारपर**–नींबूके रसमें अफीम मिलाकर वह दूधमें डालकर तीन दिनतक पिये (१४) अफीम, शुद्ध कुचलेका चूर्ण, और सफेद मिरचकी बुकणी तीनों चीजें समभाग लेकर अद्रकके रसमें घोटकर १ रत्ती भरकी गोलियें बनावे. इसमेंसे एक गोली सोंठका चूर्ण और गुडके साथ मिलाकर लेनेसे आव, पेचिश, दस्त आदि तत्काल मिट जाते हैं. कितनाही पुराना और कैसाही जबरदस्त आमविकार हो दो या तीन गोलियोंके भीतर निश्चयसे मिट जाता है इसमें पेटका फूलना, बांडे रुकना आदि स्तंभक औषधोंके दोष बिल्कुल नहीं है. यह सिद्ध औषधि है. (१५) **आमराक्षसी–आमातिसार और हैजा इन विकारोंपर**–अफीम, जायफल, लौंग, केसर, और कपूर सब चीजें समभाग लेकर दो दो रत्तीकी गोलियें बनाकर प्रतिवार १ गोली गरम जलके साथ देना (१६) **संग्रहणी, आमातिसार, रक्तातिसारपर**–अफीम २ भाग और

जायफल, सुहागा, अभ्रकभस्म, शुधा हुआ धतूरेका बीज, एक एक भाग सबको प्रसारनीके पत्तोके रसमें खरल्कर गुजके बराबर गोलिए बनाकर हरनत्त १ गोली शहतमे मिलाकर देवे. (१७) दुग्धवटी—अफीम और बचनाग प्रत्येक १॥ माशा, लोहभस्म पाच रत्ती, अभ्रकभस्म छ रत्ती सब एकत्र कर दूधमे घोटकर रत्ती भरकी गोलिये बनाकर दूधके साथ लेना. यह गोलियें लेते रहनेतक निमक और जलको कतई छोड देना चाहिये. खाने पीनेके लिये दूधकाही उपयोग करे. इस दुग्धवटीसे सग्रहणी, विषम-ज्वर, अनेक प्रकारकी सूजन, अग्निमांद्य, पाडुरोग आदि विकार मिट जाते है. (१८) अफीम ओर जावित्री प्रत्येक चार चार भाग, कपूर १ भाग और कस्तूरी १ भाग यह चार चीजे खरलकर प्रतिवार १ गुंज मात्रा पानके रसमें मिलाकर देनेसे बहुमूत्र रोग मिट जाता है.

अफीमका जहर उतारनेके उपाय.

(१) राईका चूर्ण—वगैरह कै करनेवाली दवाइयें पिलावे. (२) रीठे-काजल बनाकर पिलावे. रीठा ओर अफीमका आपसमें ऐसा विरोध है कि पावभर अफीमके ऊपर रीठेके जलकी केवल ५।७ बूंदें छोडनेसे यह सब अफीम बिलकुल निस्सत्व हो जाती है. (३) तीन या चार माशे हींग—छाछमे या पानीमें घोलकर पिलावे. अथवा केवल हींगही खिलावे. अफीमकी डिबियामें हींगका छोटासा टुकडा रखनेसे अफीम निस्सत्व हो जाती है (४) घीमे सुहागा और नीला थोथा अथवा केवल सुहागा घीमें मिलाकर पिलावे. इससे कै होकर अफीम गिर पडेगी. (५) फिटकिरीका चूर्ण और बिनोलेका चूर्ण एकत्र करके खिलावे. (६) मालकागुनीके पत्तोका रस पिलावे. (७) पिठौनीके पत्तोका रस दधमें डालकर पिलावे. (८) वच और सैंधवका चूर्ण मिलाकर खिलाना. (९) पीपल और मैन फलका चूर्ण खिलावे (१०) झेंडूके पत्तोंका रस पिलावे. (११) एक नींबूके बीचोबीच दो टुकडे करके उनमें थोडा भुनाहुआ नीलाथोथा डालकर चूसना. (१२) चौलाईकी जड महीनपीसकर पानीमें घोलकर

पिलाना. (१४) गीलीगिलोयका रस निकालकर पिलावे. (१५) **देवकपास** (जो मकानके आसपास तथा बागोंमे लगाई जाती है और जो बहुवर्षायु होती है वह) के पत्तोंका रस पिलावे. (१६) नीमके पत्तोंका अर्क पिलावे. (१७) **मोइयाके पत्तोंका** रस पिलावे. (१८) **इमलीके पत्तोंका** रस पिलावे. (१९) सरीफेके बीजोंके अदरकी मींगा पीसकर पानीके साथ पिलावे (२०) **बचोंको अफीमका जहर चढ जाय तो**— प्याजको फोडकर उसे सुंघावे अथवा कोरा देशी कागज (जिसपर पोथियें लिखी जाती है और जो बहीखातोंमें लगाया जाता है.) पानीमें मलकर वह पानी पिलावे. गर्भिणी स्त्रीको अफीम या अफीम मिली हुई दवा नहीं लेना चाहिये,

पीपल (२)

संस्कृत—पिप्पली, ऊषणा, शौंडी, चपला, मागधी, कणा, कटुबीजा, कोरंगी, वदेही, तिक्ततण्डुला, श्यामा, दन्तफला, कृष्णा, कोला, मगधोद्भवा, उषणा, उपकुल्या, तीक्ष्णतण्डुला, सूक्ष्मतण्डुला. **म.** पिंपळी **गु.** पीप, हिंदी पीपर. **बं** पिपुल. **क.** हिप्पली **तै.** पिप्पली. **ता.** तिप्पिली. **तु.** इप्पलि. **मला.** तिप्पली **गोमं.** हिपली. **फा.** पिल्पिल् दराज. **अर.** दारे फिल्फिल् **ब्रह्मी.** पी खीन. **इ.** Long pepper लॉंग पेप्पर **ला** Piper Longum पायपर लॉंगम.

वर्णन—यह एक बहु वर्षायु बेल है. इसकी उत्पत्ति बंगाल, नेपाल, आसाम, मलबार, और युक्तप्रांतके कितनेही प्रदेशोंमें विशेषतासे होती है उसमेंभी बंगाल और मलबारमें सबसे अधिक होती है. पीपलकी खेतीके लिये अच्छी उपजाऊ और खुश्क जमीनकी आवश्यकता होती है. इस बेलका विस्तार उपशाखाओंके द्वारा किया जाता है यानी पेडकी जडकी ओरमे जो छोटी छोटी डालियें निकलती है वह तोडकर दूसरी जगह लगाई जाती है. जिनसे आगे स्वतंत्र बेल बनते हैं. बरसातके शुरू होतेही यह रोपण—कार्य आरंभ किया जाता है. पांच पांच फुटके अंतरमें यह बेल लगाये जाते है. और

वैद्य-नर्त प्रेस

उनके बीचकी जगहमें मूली, बैंगन, जौ आदि बोते हैं. एक बीघा धरतीमें अदाजसे १९६ वेल होते हैं. एक बीघेकी खेतीमेंसे पहले वर्ष दो मन, दूसरे वर्ष चार मन, ओर तीसरे वर्ष छ मन पीपल पैदा होती है. इसके बाद हरसाल इसकी पैदाइश कम होती जाती हे. इसलिये पुरानी वेल उखाड डालते हैं और जड निकालकर सुखा रखते हैं. इसको 'पीपरामूल' कहते हैं. पुरानी वेल उखाड डालनेपर उसकी जगह नई टैनियें अथवा जड लगाते है. नई जड लगाते समय धरतीको जोतनेकी अथवा और कोई संस्कार करनेकी आवश्यकता नहीं होती. केवल थोडा खात उसपै डालना होता है. पीपलकी वेलको पानी नहीं देन पडता. सिर्फ गर्मीके दिनोंमें इसकी जडको धूपसे बचानेके लिये घासके नीचे दबा रखना पडता है. आगस्ट–सेपटेंबरमें इसमें फूल लगते है और फल यानी पीपल जनवरीमें पककर तयार होते हैं. पीपलके पत्ते देखनेमें पान जैसे होते हैं. जो शाखा फैलनेवाली होती हैं उनपरके पत्ते वडे, ओर चौडे होते हैं और उनपै सात मोटी लकीरें होती हैं उनके डठलभी लंबे होते हैं जिन छोटी २ डालियोंपर फल लगते हैं उनके पत्ते लंबसे होते हैं. उनपै लकीरें पाच होती हैं. उनके डंठल बहुतही छोटे होते हैं अर्थात् पत्ते डालियोंहीको लगे हुए होते हैं. पत्ते स्पर्शमें मुलायम और स्वादमें चरपरे होते हैं. पीपरामूल काष्ठमय होता हे. वेलको ,बहुत डालियें लगती हैं. वेल गोल होती है और उसपै उभडी हुई गाठें होती है. कच्ची पीपलका रंग हरा होता है और सूखजानेपर वह काली होती है. कच्ची पीपल अचारमें डालते हैं पीपल छोटी ओर वडी दो प्रकारकी होती है. छोटी पीपलको मराठीमें 'लेंडी पिंपळी' कहते हैं. पीपलका फल ओर जड इन दो अंगोंका दवाओंमें उपयोग होता है. दक्षिणके नवणकोर प्रांतमें प्रसूता स्त्रीको पीपरामूलका क्वाथ उसका जरायु (झिल्ली placenta) गेरनेके लिये पिलाते हैं छोटानागपूर प्रांतमें स्त्रियोंके आर्तवदोषयुक्त कफविकारोंमें पीपरामूलका काढा देते हैं और ज्वरमें ज्यादह प्यास लगती हो तो उसको शान्त करनेके लिये गीला पीपरामूल वरतते हैं. सूजन उतारनेके लिये

उसका लेप लगाते हैं. मोंबीरके भूतपूर्व सिव्हिल सर्जन डॉ. थॉर्नटन्नें प्रसूत स्त्रियोंका रक्तस्राव बंद करनेके लिये, और ज्वर हटानेके लिये पीपर और पीपरामूलकी प्रशंसाकी है. प्रसूत स्त्रीका गर्भाशय पहेले जैसी हालतपर लानेके लिये पीपर और पीपरामूलका वर्तना हितकर है, कितनेही डॉक्टरोंनेंभी इसे अजमाया है. छोटानागपूर प्रांतमें चावलोंसे एक प्रकारकी बीर बनाते हैं उसको जोश देनेके लिये उसमें पीपरामूल गेर रखते हैं.

पीपलमें एक हवासे उड जानेवाला तेल, एक राळसदृश द्रव्य, और एक 'पायपरिन' नामका सत्त्व होता है.

गुणदोष—पीपल स्निध, चरपरी, गरम, सभोगकालमें हितकारक, अग्निको दीपन करनेवाली, कडवी, रसायन, सारक, हल्की, हृदयप्रिय, दस्तावर, पाचक, पित्त करनेवाली, दुस्सह और वायु, दमा, कफ, क्षय, खांसी, ज्वर, कोढ, अरुचि, गुल्म, बवासीर, प्रमेह, पिल्ही, उदररोग, त्रिदोष, प्यास, कृमि, अजीर्ण, आव, पांडु, पीलिया, और शूल इनको मिटानेवाली है. **कच्ची पीपल**—स्निग्ध, ठंडी, मीठी, कफको बढानेवाली, पित्तको मिटानेवाली और भारी है. **सैंहली पीपल**—गरम, अग्निदीपन करनेवाली, चरपरी, कोठा साफ करनेवाली, और कृमि, कफ, वादी और दमा इनको दूर करनेवाली है. **वानर पीपल**—कडुई, कसैली, मीठी, और मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, स्त्रियोंका योनिशूल और विस्फोटक इनका नाश करनेवाली, है **वनपीपल**-रोचक, चरपरी, और अग्निको बढानेवाली है. कच्ची वनपीपलमें सूखीकी अपेक्षा अधिक गुण होता है. सूखी अति तीक्ष्ण होती है. **पीपरामूल**—अग्निदीपक, रोचक, पित्त बढानेवाला, पाचक, रूक्ष, दस्तावर, तीक्ष्ण, कडवा, हलका, गरम, और आम, शूल, तिल्ली, गुल्म, उदर, कफ, वायु, दमा, खासी, कृमि, अफरा, क्षय इन रोगोंका दूर करनेवाला है.

औषधिप्रयोग—(१) **चौंसठी पीपल**—मन्न वादीके रोग और दमा-खासीके लिये—पीपलको लगातार ६४ प्रहरतक खरल करनेसे उसे चौंसठी पीपल कहते हैं. यह बहुत तीव्र होती है. इसको एक

चावलके बराबर शहतमें मिलाकर देवे, इससे यदि. शरीरमें बहुत गरमी मालूम हो तो, घी पिलावे. (२) अपस्मार, वायगोलेपर-पीपल २ भाग, गोल मिर्च ३ भाग और सेंधा निमक १ भाग लेकर सबका चूर्ण कर रखे और हरवख्त छ माशे चूर्ण छाछके ऊपरके जलमें डालकर वह पिलावे. (३) **पीपलका चूर्ण**—दुगना गुड मिलाकर देनेस अरुचि, हृद्रोग, दमा, खासी, क्षय, कावर, अग्निमान्द्य, पाडु, मिरगी, ओर जीर्णज्वर नष्ट होता है. शहतमें मिलाकर लेनेसे मेद, कफ, दमा, खासी, हिचकी, बुखार, पाडु, और तिल्ली यह रोग दूर होते हैं. (४) **नींद आनेके लिये**—पीपरामूलका चूर्ण गुड मिलाकर खावे. (५) **स्त्रियोंके स्तनोंमें दूध आनेके लिये**—तपेहुए दूधमें दो माशे पीपलका चूर्ण डालकर पिलावे. (६) **कै, खांसी, दमा और हिचकीपर**—पीपलका चूर्ण और मोरके पखकी राख शहतमें मिलाकर बारबार चटाते रहना. (७) **श्वासपर**—पीपरामूलको आठ प्रहरतक खरल करके २ माशे चूर्ण शहतमें चाटना. (८) **आमातिसारमें दरद होता है उसपर**—पीपल और हरडका चूर्ण फाककर ऊपरसे गरमजल पीना. इससे खुलके दस्त होकर दर्द मिट जावेगा. (९) **रतौंधीपर**—गोमूत्रमें पीपल घिसकर आखोंमें आंजना ओर दोनों जून हथियाके फूलोंकी शाक बनाकर खाना. (१०) **तिल्लीके फूलनेपर**—पीपल और शहत डालकर छाछ पिलाना. (११) **सब प्रकारके उदररोगपर**—गोमूत्र अथवा थूहरके दूधके एक हजार पुट दी हुई पीपल खिलावे. अथवा वर्धमान प्रयोगसे पिप्पली सेवन करे. अथवा थूहरके दूधमें दिनभर पीपलके चूर्णको खरलकर उसमेंसे रोगीकी शक्तिके अनुसार खिलावे. और इसीका पेटके ऊपर लेप करे. (१२) **वर्धमान पिप्पली**—गोका दूध ४ तोले, पानी १६ तोले, पीपल तीन तोले सब एकत्र करके, कलई लगाये हुए बर्तनमें डालकर आचपर औटानेको रखे. जब सब पानी जल जाय तब उसके अंदरकी, पीपल चबाकर खा जावे और ऊपरसे दूध पिये. **दूसरा प्रयोग**—प्रथम दिन पाच

पीपलसे शुरू करके प्रतिदिन तीन तीन बढाते हुए तेईसतक पहुंचे और फिर उसीतरह घटाते हुए पांचतक आजावे. दूधमें पानी न डालकर केवल दूधही आधा औटा डाले और पीपल खाकर ऊपरसे दूध पिये. अथवा पीपल न खाय और केवल दूधही पिये. इससे जीर्णज्वर, खांसी, पांडु, गुल्म, बवासीर, प्रमेह, उदर, अग्निमांद्य, और वातरोग दूर होते हैं. तीसरा प्रयोग–प्रथम दिन दस पीपलसे शुरू करके दस दिनतक प्रतिदिन दसके हिसाबसे बढावे और उसी क्रमसे घटाता हुआ दसतक आकर फिर दवा छोड दे. यह उत्तम प्रयोग है. प्रतिदिन छ छ बढाना मध्यम प्रयोग है और तीनका कनिष्ठ प्रयोग है. (१३) अन्न पचनेके लिये–भोजनहोतेही पीपलका चूर्ण शहतमें मिलाकर चाटना. (१४) गुल्मरोगमें–पीपल, और, जवखारका, ३ माशे चूर्ण, अदरकका रस और शहतमें मिलाकर देना. (१५) कै करानेके लिये–पीपल, मीनफल, और सेंधानमक इन तीनोंका चूर्ण एकत्र करके गरम जलके साथ लेना. (१६) आमशूल, अजीर्ण और सूजनपर–पीपल और सोंठका चूर्ण गुड मिलाकर खाना. (१७) कफरोगपर–पीपलका चूर्ण, २ भाग घी और १ भाग शहत मिलाकर चाटना (१८) सिरपीडापर–पीपल, नींबूके रसमें घिसकर नास देवे. (१९) अम्लपित्तपर–पीपरामूलका चूर्ण प्रतिवार ३ माशे, मिसरी मिलाकर खाना. यह औषध महीने भरतक दोनों जून लेना चाहिये. (२०) बालकोंका ज्वर, खांसी, अतिसार, और कैपर–पीपल, मजीठ, नागरमोथा और काकडासिंगी चारोंचीजोंका मिलकर १ या २ माशे चूर्ण शहतमें मिलाकर देना. (२१) कैपर–गठोना पीपरामूलका चूर्ण कपड छनकर इसके बराबर उसमें सोंठका चूर्ण मिलावे और प्रतिवार तीन माशे चूर्ण छ माशे शहतमें मिलाकर चाटना. (२२) वातकफज्वरपर–पीपलके काढेमें शहत मिलाकर पीना. (२३) हृद्रोग, ज्वर, खांसी, क्षय इनरोगोंपर–२६ तोले गौका दूध मीठी आंचपर आधा औटावे और ठंडा होनेपर उसमें, चीनी, शहत और घी हरेक दो दो तोले और

पीपलका चूर्ण १ तोला मिलाकर पिये. (२४) गर्भवती माताका दूध पीनेसे बाचेको खांसी, अग्निमांद्य, कै, सुस्ती, अरुचि, भ्रम आदि विकार होते हैं, शरीर बिलकुल सूख जाता है और पेट फूलता है उसपर—पीपलका चूर्ण शहतमें मिला रक्खे और बच्चेकी उमरके अनुसार हरवक्त उडदसे गुंजके बराबरतक चटाता रहे. (२५) **मूर्च्छापर**—पीपलका चूर्ण शहतमें मिलाकर चखाना. (२६) **आमवातपर** (Rheumatism) १ सेर गौके दूधमें एक पीपल और चार मिलावे कतरकर डालना, और एक चौथाई दूध रहनेतक उसे औटाकर उसमें मिसरी मिलाकर पीना. (२७) **उदावर्त** और **गुल्मपर**—४ पीपलका चूर्ण करके उसको २ तोले पानीमें मिलाकर कपडछनकर उसमें २ तोले गौका घृत मिलाकर पीना. (२८) **खांसीपर**—गंठोना पीपरामूल, सोंठ और बहेडेकी छाल इन तीन चीजोंका चूर्ण शहत मिलाकर चाटनेसे खांसी बहुत शीघ्र मिट जाती है. (२९) **दांतके रोगोंपर**—पीपल, जीरा और सेंधा निमक इन तीन चीजोंका चूर्ण एकत्र करके उससे दांत मांजनेस दांतोंका दरद, हिलना, मसूडोंका फूलना आदि विकार दूर होते हैं. (३०) **बवासीरपर**—छाछमें पीपलका चूर्ण डालकर पिलाना. (३१) **वातविकारपर**—बीस तोले दूध तपानेको रक्खे. जब आधा औट जाय तब उसमें गंठोना पीपरामूलका कपडछन किया हुआ चूर्ण १ तोला डालकर दूधको खूब हिलाहिलाकर औटावे. जब चौथाई रहजाय तब उसमें १ तोला मिसरी मिलाकर पीजाय. यह प्रतिदिन सबेरे एकबेर लेना. (३२) **परिणामशूलकोलिये**—पीपलका चूर्ण ४ तोले, गुड १६ तोले, गौका घी ६४ तोले यह सब चीजें २९६ तोले दूधमें पकाकर सबका हलुआसा बनाकर रखना और उसमेंसे नित्यप्रति सबेरे ४ तोलेतक सेवन करना. (३७) **सब प्रकारके सिरदर्दपर**—पीपल और सेंधानिमक पानीमें घिसकर उसकी दो या तीन बूंदें नथुनोंमें छोड देनेसे सिरदर्द तत्काल मिट जायगा. (३४) **विषमज्वर, हृद्रोग, खांसी, दमा और क्षयपर पंचसार**—शहत, घी, दूध, पीपल, और चीनी, इन पांच

कपूर भेजा जाता था. उसी ग्रंथमें लिखा हुआ है कि फा...
नामके टापूमें कपूर बहुत उत्पन्न होता था. यूल साहब लिखते हैं कि
कानसूरको ' बेरांस ' भी कहते हैं. यह सुमात्रा टापूके पश्चिम किनारेपर एक
छोटासा कसबा है. इसीके नामसे ' भीमसेनी ' कपूरको ' बरांस कपूर '
कहने लगे हों ऐसा हमारा अनुमान है.

भीमसेनी अथवा बरांस कपूर जिस जातिके वृक्षसे निकलता है उस जा-
तिका पता पहले पहल कोलब्रूक साहबनें खोज करके लगाया था. भीमसेनी
कपूरके वृक्ष आठ वर्षके पुराने होनेपर उनको तोडकर चीर डालते हैं और
छोटे छोटे टुकडे बनाते हैं. तब उसकी छालके नीचेकी ओर तथा स्तंभका-
ष्ठकी चीरोंमें कपूरके छोटे छोटे कण मिलते हैं. वैद्यकमें कपूरके पक्व औ-
अपक्व दो भेद किये गये हैं, इनमेंसे बरांस कपूर अपक्व और शेष दो जा
तियोंका कपूर पक्व कहलाता है. जो पेडमें तैयार मिलता है—जिसे अग्निपै
पकानो नहीं पडता, वह अपक्व; और जो भाफके द्वारा अर्कविधीसे बनाया जाता
है वह पक्व—इसप्रकार पक्वापक्वभेद मानते हैं. पक्व कपूरसे अपक्व कपूर गुणोंमें
श्रेष्ठ है. एक पेडमेंसे अधिकसे अधिक ४४० तोले बरांस कपूर निकलता
है. इसको इकठा करनेमें बहुत खर्च बैठता है. इसलिये यह बहुत महंगा
बिकता है. असल बरास कपूरका भाव लगभग ८० रुपये रतल होता है, जो
पेड बहुत बडा और पुराना होकर सूखनेकी तैयारीपर होता है उसमेंसे
निकलनेवाला कपूर सर्वोत्तम होता है. पेडमेंसे निकालनेबाद उसको पानीसे धोकर
साफ करते है. बोर्नियोमें जो बरांस कपूर पैदा होता है, उसका अधिकांश
वहाके राजाओंकी मरणक्रियामें लग जाता है और शेष चीन, जापान, सियाम
आदि देशान्तरोंमें भेजा जाता है. और कपूरकी अपेक्षा बरास कपूर कठिण
होता है. वजनमें भी यह और कपूरसे कुछ भारी होता है. इससे पानीमें
डालनेसे नीचे चला जाता है. और और कपूरकी भांति हवामें खुला रखनेसे
यह जल्दी नहीं उडता. इसे पिगालनेके लिये भी मामूली कपूरसे अधिक गरमी
अपेक्षित होती है. इसका गंध बडा तेज होता है. देखनेमें स्फटिक जैसे

बहुत चमकदार, सफेद, स्वच्छ, पतले और छोटे छोटे टुकडे होते हैं. इसपर सोराखारका तेजाब (Nitric acid) डालनेसे यह मामूली कपूर जैसा हो जाता है. चीनी लोग सियाहीमें सफाई और चमक आनेके लिये बरांस कपूर बरतते हैं. मामूली कपूर तथा और कितनीही दवाइयोंकी मिलावटसे बनावटी बरांस कपूर बनानेकी विधि वैद्यक ग्रंथोंमें इसतरह लिखी हुई है. कपूर मामूली ८ तोले, इलायची छोटी २ तोले, और चन्दन, समुद्रफेन, निर्मलीका बीज (पायपसारी) रसोत, भद्रमोथा, यह पांच चीजें प्रत्येक एक एक तोला इन सातों चीजोंको दूधमें पीसकर गोला बनावे, और उसे एक बर्तनमें रखकर उसके मुंहपर दूसरा उसीके जोडका बर्तन औंधा करके रक्खे, और दोनोंके संधिपर कपडा और मिट्टी लगाकर यह ऐसा बंद कर डाले कि उसमेंसे भाफ बाहर न निकल सके. फिर उसको एक छोटेसे चूल्हेपर रखकर, उसके नीचे, अंगूठेके बराबर मोटी बत्तीका घीका चिराग बाल रक्खे. ऊपरके बरतनके तलपर एक गीला कपडा डालकर उसपे थोडा थोडा पानी छोडता रहे; ता कि वह सूखने न पावे. इस प्रकारसे एक प्रहरतक आंच पहुंचानेसे ऊपरके बरतनके भीतर, कपूरके, स्फटिक जैसे बहुत स्वच्छ, सफेद और हीरेकीसी चमकवाले छोटे छोटे कण जमे हुए मिलेंगे. उन्हें बर्तन ठंढा होनेपर निकाल लेना. यह कृत्रिम बरास कपूर बनानेकी विधि है. गुणोंमें तथा सुगंधमें यह असली कपूर जैसाही होता है. केवल भेद इतनाही होता है कि असली बरासके दिखावटी, मिसरी जैसे छोटे छोटे टुकडे होते हैं और बनावटीके बारीक कण होते हैं.

२ रा, पत्रिया कपूर—यह एक जातके छोटेसे पौधेके पत्तोंमेंसे निकलता है. यह पौधा चीनके तेनासरीम प्रांतमें तथा कुमाऊंके पहाडपर होता है. उसे (Blumea balsami fera) कहते हैं. ब्रह्मी

चीजोंको एकत्र मथकर पिलावे. (३५) जीर्णगतज्वर दमा, खांसी, पांडुरोग, वीर्यक्षय, अग्निमांद्यमें—शहत १ भाग, घी दो भाग, पीपल ४ भाग, चीनी, ८ भाग, दूध ३२ भाग और दालचीनी–तमालपत्र–इलायची छोटी और नागकेशर चारों मिलकर १ भाग सबको पकाकर उसके मोदक बनाकर प्रतिदिन एक मोदक खाना. (३७) रक्तपित्तमें—पीपलका चूर्ण शहत मिलाकर चाटना. (३३) पाचकपिप्पली—नींबूके रसमें सेंधा नमक मिलाकर उसमें पीपलको चार दिनतक भिगो रखे उसके बाद निकालकर सुखाके रख छोडे और प्रतिदिन उसमेंसे दो–चार पीपल खा जावे. इससे अजीर्ण नष्ट होकर मुहको स्वाद आता है. और अन्नका पचन होता है. (३८) नारूपर—पीपरामूल ठंडे पानीमें पीसकर पिये. (३९) अष्टकट्वरतैल—पीपल और सोंठ प्रत्येक १६ तोले, सरसोंका तेल ४ सेर, दही ४ सेर छाछ ३२ सेर इन सब चीजोंको एकत्र पकाकर केवल तेल ही शेष रह जाय तब उतारले. इसे अष्टकट्वरतैल कहते है. इसकी मालिश करनेसे गृध्रसी (Sciatica) और ऊरुस्तम्भ (Paraplegia) यह दो वातविकार नष्ट होते है.

कपूर.

संस्कृत—कर्पूर, घनसार, शीतकर, शशांक, शाभ्र, चन्द्र, शीतांशु, हिमवालुका, शिला, हिमकर गौर, तुषार, मिहिका, शीतप्रभ, अभ्रसार, ताराभ्र, कुमुद, चन्द्रालोक, इन्दु, शुभ्रांशु, स्फटिक, सेव्रक, रेणुसार, सिताभ्र, स्फटिकोपम, भस्माह्व, हिमांशु, नक्षत्रेश, निशापति, भस्मवेध, विधु, तरसार, हिमाह्व, मुक्ताफल, रात्राह्व, हिमोपल, शशि, शीतान्ह, शीतरश्मि, हिम, शीतरज, सिताभ, शीतल, तुहिन, चन्द्रसंज्ञक, भूतिक, चन्द्रभस्म, हिमाभ्र, चन्द्रनाम, जैवातृक, कुमुद्वान्धव, औषधीश, सोमसंज्ञ, यामिनीपति, निशीथिनीनाथ, शशधर. **म** कापूर. **गु** कपूर. **बं** कर्पूर **क** कर्पूर. **ते** कर्पूरमु **फा- अ.** काफूर-**ब्रह्मी.** पारोपरार् **इं.** Camphor क्याफर. **ला.** Laurus Camphora लॉरस क्याम्फोरा.

भीमसेनी कपूर. (बरास कपूर)

सं. पोतास, भीमसेन, पाशु, सितकर, शकराजसंसज्ञ, पिंज, हिमयुत हिम, अब्दसार, वालुका, जूटिका, शीतल, तुषार, पत्रिकाख्य. म. भीमसेनकापूर. गु. भीमसेनी बरास, इं. Borneo Camphor बोर्नियो कॅम्फर. ला Dryobalanops Camphora ड्रायोबेलानॉप्स क्याफोरा.

चीनी कपुर—सं. चीनक, चीनकर्पूर, कृत्रिम, धवल, पट्ट, मेघसार तुषार, द्वीपकर्पूरज. म. चिनीकापूर. ला. Cinnamomum Camphora सिनामोमम क्याफोरा.

वर्णन—जापान, चीन, ओर सुमात्रा, फोर्मोसा, बोर्निओ, मॅडे इ टापुओंमें कपूरके वृक्ष बहुत विपुलतासे होते हैं. युरोपियन वृक्षकुलविभागके अनुसार यह वृक्ष Lauraceae अथवा तजकी जातिमें गिना जाता है इसकी उंचाई ६० से ८० फुटतक होती है. पत्ते कुछ दीर्घवर्तु (अण्डाकृति) नोककी ओर संकुचित होते जाते हैं. देखनेमें वरछीनु होते हैं. उनकी किनार अखंडित होती है. पत्ते चिकने होते हैं और उन लकीरें होती हैं. पत्तोकी ऊपरकी ओर कुछ फीका पीलापन लिये हुए रंगकी होती है और नीचेकी ओरका रंग ऐसा होता है जैसा समुद्रका दूरसे देखनेपर दिखाई देता है. पत्तोंके डंठल लंबे होते हैं. शाखाओं छाल ऊपरसे खरदरी और भीतरसे चिकनी होती है. इसमें सफेद रं छोटे छोटे फूल आते हैं. पुष्पदंड लंबा होता है. फल मटर जैसे होत वृक्षके प्रत्येक अंगसे कपूरकी सुगंधि आती है.

कपूर, वृक्षके भीतर खुदबखुद यानी बिना किसी बाहरी संस्कारके गा बनकर रहनेवाला एक प्रकारका तेल है. राजनिघंटुकारने तीनप्रकारके क का वर्णन किया है. १ भीमसेनी अथवा बरास कपूर, २ पत्रियाकपूर और चीनी कपूर. इन तीनों जातियोंका कपूर, अबतक बराबर बरतनेमें आता इसे खोर्दादबा नामक एक प्रवासी ईसवी सनकी ९ वीं सदीके अंतमें लिखे अपने एक ग्रंथमें लिखता है कि, उससमय मॅले टापूमेंसे चीन और हिंदुस्था

लोग इसको पकाकर कपूर निकालते हैं. यह बरास कपूरसे वजनमें कुछ भारी होता है; किन्तु हवासे जल्दी उड जाता है. इसको दवनेकीभी सुगंध आती है. चीनमें इस कपूरको 'नागई' कपूर कहते हैं.

३ चीनी कपूर—ऊपरके दोनों जातके कपूरसे यह सस्ता होता है. लगभग ६०—६१ रुपये हंड्रेडवेट (५६ पक्के सेर) के हिसाबसे बिकता है. यही पक्क कपूर कहलाता है. इसको (Cinnamomum Camphora) कहते हैं. इस पेडके नीचेके हिस्सेके छोटे. २ टुकडे करके, जिस प्रकार चन्दनका तेल निकाला जाता है, उसी प्रकार, जापानी लोग भाफके द्वारा उनका तेल निकालकर जमाते हैं. कपूर बनानेकी भट्टियें चिकनी मिट्टीकी होती हैं. फोर्मोसा टापूमें 'टामसुई' नदी जहांसे निकलती है उसी जगहके आसपास, वहांके गरीब, दुबले आदमी, ये भट्टिया खडी करके, कपूर बनाते हैं और उसे बेचकर अपना गुजारा करते हैं. कपूर जैसा २ बनता जाता है वैसाही वैसा वे चीनी व्यापारियोंके हाथ बेचते रहते हैं. वे व्यापारी फिर बहुतसा माल इकट्ठा हो जानेपर युरोपियन सौदागरोंको बेच डालते हैं. हिंदुस्थानमें केलेके वृक्षकी जातके एक पेडसे कपूर निकालते हैं. इस वृक्षको 'कपूरकेला' कहते हैं. भिन्न २ देशोंमें अलग २ विधीसे कपूर बनाते हैं. कई वर्षकी बात है कि एक बार कलकत्तेमें इमारतके कामकी बडी २ लकडियें देशावरसे आई थीं उनमें कितनीही लकडियें चीरनेपर उनके भीतरसे कपूर निकला था.

पुस्तकों तथा वस्त्रोंमें कपूर रखनेसे उन्हें कीडा नहीं लगता. कपूर खुला रखनेसे उड जाता है. उसको शीशीमें रखकर उसमें कुछ गोलमिरचके दाने डाल देनेसे उसका प्रतिबंध हो जाता है अर्थात् वह बहुत कम उडता है. काफूरके इस उड जानेके गुणके कारणसेही मनुष्यके दूर चले जानेको काफूर होना कहते हैं. एक अंग्रेजी डॉक्टरने लिखा है कि कपूर सब प्रकारके ज्वरमें उपयोगी दवा है. कपूरके

जलमें किसी वृक्षका बीज कुछ दिनतक भिगो रखनेके बाद बो देने-से वह तत्काल अंकुरित होता है.

औषधके अतिरिक्त बनावटी चमडा, गोलाबारूद, फोटोग्राफीके कितनेही "सोल्यूशन" (मिश्रण) वगैरहमेंभी कपूरका उपयोग होता है. परंतु इसकी उपज जरूरतकी अपेक्षा बहुतही कम होनेसे, यह दिनोंदिन महंगा होता जाता है. इसकी अधिक पैदाइश फोर्मोसा टापूहीमें होती है, और उसका सब व्यापार वहांके जापानी मालिक और एक अंग्रेजी कंपनीने सर्वथा अपने हाथमें रखा है. इससे वे मनमानी कीमत ले सकते हैं. इस-कष्टको मिटानेके लिये अमेरिकाके कितनेही रसायनशास्त्रवेत्ता पिछले कई वर्षोंसे सतत परिश्रम कर रहे थे. अंतमें उन्होंने हालहीमें कितनीही चीजोंकी रासायनिक मिलावटसे बनावटी कपूर करनेमें सफलता प्राप्त की है. यह बनावटी कपूर असली कपूरसे किसी तरह भिन्न या कम उपयोगी नहीं है. कहते हैं कि इसको बनानेमें खर्चभी बहुत कम पडता है. इस उद्योग की उन्नति करनेकेलिये अमेरिकावालोंने एक कंपनी स्थापन की है और उसनें न्यूयॉर्कसे २९ मीलके अंतरपर पोर्टचेस्टर नामक नगरमें कपूर बनानेका एक बडा भारी कारखाना भी खोला है. हिंदुस्थानमें लखों रुपयेका कपूर हरसाल देशान्तरोंसे आता है. यदि यहांपर कोई इसी तरह बनावटी कपूर बनानेका कारखाना खोले तो उसमे देशका बडा भारी उपकार हो सकता है. हमारे यहांके रसायनशास्त्रवेत्ताओंको इसविषयकी ओर ध्यान देना चाहिये.

मामूली कपूर—मधुर, कडुआ, ठंडा, सुगंधि, कृमिनाशक, हलका, आंखोंके लिये हितू, लेखन, वृष्य, प्रीतिकर, चरपरा, मृदु, नशीला; और कफ, दाह, प्यास, क्षमा, ज्वर, अतिसार, रक्तपित्त, कण्ठरोग, नेत्ररोग, विष, पित्त, मुखकी विरसता, दुर्गंध, उदररोग, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह और मलकी दुर्गंधि इनका नाशक है. नया कपूर स्निग्ध, कडुआ, गरम

और दाहजनक होता है; और वही पुराना होनेपर, दाह–शोषको दूर करता है. धुला हुआ कपूर गुणोंमें श्रेष्ठ होता है.

भीमसेनी कपूर–मधुर, शीतल, वृष्य, कडुआ, चरपरा, और तृषा, दाह, रक्तपित्त और कफ इनका नाश करता है.

राजनिघंटुकारने वातरोग, दांतोंका हिलना, कमजोरी आदि रोगोंमें *कपूरतैल लाभदायक है ऐसा वर्णन किया है.* बरास कपूरके वृक्षमें छेद करनेसे जो कपूरका पनलासा रस निकलता है वही बहुत करके राजनिघंटुकारोल्लिखित कपूरतैल होना चाहिये. हृत्कम्प, अपस्मार, कलाक्षयखवायु, नींदमें वीर्यस्राव, पीप बहता हुआ सुजाक, उसमें होनेवाला शिश्नका पीडायुक्त उत्थापन, इन रोगोंमें कपूर बहुत लाभ पहुंचाता है. परंतु उसकी मात्रा ½–१ गुंजसे अधिक नहीं देना चाहिये. इसकी मध्यम मात्रा १ से ५ गुंज तक देनेसे चित्तको आल्हाद और शांति उत्पन्न होती है. दमा, पुरानी जोडोंकी पीडा, और योनिशूलमें २ से ३ रत्ती कपूर देना चाहिये. अधिक मात्रा देनेसे हृत्कंप होता है और शरीरमें क्लम (थकावट) पैदा होना है. खाली कपूर नहीं सेवन करना चाहिये. किन्तु जब उसको लेना हो तो उसमें एक तिहाई साबन मिलाकर उसकी गोलियें बना रखे और दिनमें तीन बार, एक एक गोली लेता रहे. कपूरकी अधिक मात्रा खानेसे मृत्युतकके भयकर परिणाम होते हैं ऐसा अनुभव है. हकीम लोग कपूरको ठंढा तथा मस्तिष्क और हृदयको उत्तेजक मानते हैं. वैद्यकमें बरास कपूरको कामोत्तेजक और वीर्यस्तंभक माना है. परंतु हकीम लोगोंका मत इससे बिलकुल विपरीत है. उसी तरह वैद्यकमें बरास कपूरको आखके लिये बहुत लाभदायक मानते हैं. परतु हकीम लोग इसका निषेध करते हैं. वैद्यक ग्रंथोंमें अनेक वीर्यस्तंभक औषधोंमें तथा आखोंकी दवाओंमें बरास कपूरका उपयोग कहा गया है.

ई० स० १८९२ में ७५३० हंड्रेडवेट कपूर मुंबईसे विलायतकी

तरफ भेजा गया था और १८९४ में १३९७१ हंड्रेडवेट रवाना हुआ· स० १८९४ में चीन और जापानके दरम्यान लढाई शुरू होनेसे कपूरकी तिजारतको बहुत कुछ हानि पहुचीथी. इसलिये सिलोनमे सरकारनें कपूरके पेड मंगाकर लगाये हैं ऐसा मालूम हुआ है.

औषधि प्रयोग (१) बिच्छूके काटेपर ४ से ६ रत्ती कपूर पानमें डालकर खाना. (२) चौपायोंके जख्ममें कृमि हो जाने पर उसमें कपूर भर देना (३) दाद–खुजली आदि त्वचा संबंधी रोगोंपर मरहम- कपूर १ तोला, सफेत कथ्था १ तोला और सिंदूर ॥ तोला तीनोंको एकत्र. पीसकर कासेकी थाळीमे रखकर उसमे १० तोले घी डाले और हाथसे खूब मसलकर १२१ बार पानीसे धो डाले. इस मरहमसे दद्रु, गरमीके व्रण, सडी हुई जखम, अग्निदग्ध व्रण, आदि त्वचा संबंधी रोग आराम होते हैं. (४) बचनागके विषपर कपूरका पानीमें घोलकर पिलाना. (५) पलकोंकी बिरौनिया गिर जाती हों उनपर—नींबूके रसमें कपूर घोंटकर लगाना (६) उपदंशके व्रणपर–कपूर जलानेपर जो शेष रह जाता है उसको घीमें मिलाकर लगाना. (७) वायुसे शरीर सुन्न पड जाता है उसपर–कपूरका तेल मालिश करना. (८) बच्चोके पेटमे कीडे पड जाते हैं उन्हें थोडा कपूर गुडके साथ खिला देना. (९) दांत दुखते हो अथवा उन्हें कीड लगी हो तो–डाढके तले कपूर धर रखना. (१०) आंखकी फूली काटनेके लिये–वडके दूधमे कपूर मिलाकर अंजन करना. इससे दो महीनेतककी पुरानी फूली कट जाती है (११) मूत्राघातमे एक बारीक कपडेमें कपूरका चूर्ण डालकर उसकी बत्ती बनाकर उसेधीरे २ मूत्रद्वारमे दाखल करके वहापर रहने देना. इससे खुलासा पेशाब होकर मूत्राघातका नाश होगा. (१२) चोटलगी हुई जगहपर पीडा होती हो तो–कपूरके तेलकी मालिश करना. कपूरको खरलमे घोटकर बारीक चूर्ण बनाना और उसमें चौगुन

(१) अफ्रीकाके दक्षिण भागमें केपकॉलनी और नाटाल नामके दो प्रांत हैं. उनमें *किनारे किनारेसे लगातार २००।३०० मीलतक ब-रावर* घीकुवारके जगल लगे हुए हैं. वहांके लोग बकरेके अथवा बंदरके चमडेकी थैलियें बनाकर उनके मुंह पौधेके जडको लग रखते हैं और पत्तोंके नीचेके भागमें बेंडे चीरे देकर उनके नीचे V इस आकारके लकडीके बरतन रख देते हैं जिनमें ऊपरसे रस टपकता रहता है और वह पीछे हवा लगनेसे सूख जाता है. इसीको एलुवा कहते हैं. इसी रीतिसे सब तरहकी घीकुवारसे एलुवा बनाया जाता है. *पश्चिम हिंदी महासागरके टापुओंमें तथा काठिया*वाडके पश्चिम किनारेपर एक हबशी नवाबकी जाफराबाद नामकी रियासत है; उसमें एक पीले फूलोंकी घीकुवार पैदा होती है. काठियावाडके झिंझुवाडा, पात्री तथा वढवाण आदि स्थानोंमेंभी यह देखनेमें आती है. *उस प्रांतकी घीकुवारको पहले पहल युरोपियन उद्भि*ज्जशास्त्रज्ञ मिलरने देखा था जिसने उसको (Aloes barbadensis ॲलोज बारबाडेन्सिस यह नाम दिया. इसकी पत्तियें १ ½ से २ ½ फूटतक लंबी और ½ से ½ इंच मोटी होती हैं. (२) जाफराबादी (Aloes littorale) घीकुवारके पत्तोंका आकार तलवार जैसा होता है *उनका रंग हरा होता है और उनपे* सफेद रंगके छोटे २ दाग होते हैं. फूलोंका बाह्यकोष पीला होता है. फूलोंकी नाल १४ से १६ इंचतक लंबी होती है. नीचेके भागमें नारंगी रंगके, बीचमें फीके रंगके, और ऊपरी भागमें हरे रंगके फूल लगते हैं. उनमेंका परागकोश लाल होता है. फूलोंकी नाल अगहनमें निकलती है और पौधके अन्तमें गल जाती है. (३) हबशी घीकुवार– (Aloes Oulgaris) यह जाति सेंतायतमें और काठियावाडमें समुद्रकिनारेपर खुदबखुद पैदा होती है. इसकी जडका भाग कठिण और १ से २ फूटतकऊँचा होता है. उसकी चौडाई २–३

सं कुमारीः म कोरफड.

सं पर्पटकं म पित्तपापडा.

G V LAD

पैथ नरसे प्रेस

तेल मिलाकर सबको फिर घोटना जिसमें कपूर पिगलकर तेलमें मिल जावेगा. इसको कपूरका तेल कहते हैं. (१३). नासूरपर-घीके साथ कपूर खिलाना. (१४) ज्वर-अतीसारके लिये कर्पूररस कपूर, शुद्ध हुआ सिंगरफ, अफीम, नागरमोथा, इंद्रजव और जायफल यह सब चीजें समभाग घोटकर अद्रकके रसमें रत्तीभरकी गोलियें बनाकर सेवन करना. इससे ज्वरयुक्त अतीसार, केवल अतीसार, छओं प्रकारकी संग्रहणी, रक्तातिसार ये विकार शांत होते हैं.

घीकुवार, कुवारपाठा.

संस्कृत–गृहकन्या, कुमारी, कन्यका, दीर्घपत्रिका, स्थलेरुहा, मृदु, बहुपत्रा, अमरा, अजरा, कण्टकप्रावृता, वीरा, भृङ्गेष्टा, विपुलस्रवा, ब्रह्मघ्नी, तरुणी, रामा, कपिला, अंबुधिस्रवा, सुकण्टका, स्थलदला, माता, मण्डला, घृतकुमारी, सहा, अफला, सुरसा, अग्निपिच्छिला. म० कोरफड, कुवांरकांडें. गु० कुवार बं० घृतकुमारी क० लोयिसर, कटालिगिड, कन्ये कुमारी, तै० कालाबांडा. ना० कट्टाले. तु० नालिसारा. मला. कट्टवाला. ब्रह्मी-मॉक. अ मिब्र सुकुतरे फा. मुसब्बीर यु० फेकरा इं: Barbadies aloes बार्बाडोस अलोज. ला. (Aloe Barbadense) आलो बार्बेडेन्स.

वर्णन–एलुवा जिस वृक्षसे बनाया जाता है उसको घीकुवार कहते है. युरोपियन उद्भिज्ज शास्त्रवेत्ताओंने इस वृक्षका 'लिलिएसी'(Liliacea) नामक वृक्षकुल निर्धारित किया है. घीकुवारके जितने संस्कृत नाम है वे प्रायः अन्वर्थक हैं. इसको जड साहित लाकर हवामें लटका रखनेसे विना मिट्टी और विना पानीके यह सदैव हरी रहती है. ऊपरकी पत्ती सूखनेपर अंदरसे नये पत्ते निकलते हैं. इस कारणसे इसको कुमारी गृहकन्या, तरुणी अजरा, अमरा आदि नाम दिये गये हैं. इसके पत्तोंके किनारेपर कांटोंके नाई दाँत रहते हैं. इससे सुकण्टका कहते

हैं. इसकी पत्तियें तीन २ अंगुल मोटी होती हैं इसमे इसको स्थूल दला कहते हैं. इसकी पत्तियें रसमय होती हैं. इससे सुरसा नाम दिया. इसका गूदा या रस बहुत पिच्छिल अर्थात् लुवाबदार होता है; इसकारण इसे अतिपिच्छिला कहते हैं. इसे फल नहीं लगता; इससे यह अफला हुई. इसी प्रकार सब नाम सार्थक हैं. घृतकुमारी अथवा घीकुवार कहनेका कारण ऐसा प्रतीत होता है कि इसकी पत्तियोंके टुकडे घीमें पकाकर उस घीको दवाके कामेमें कभी बरतते होंगे. अथवा यह भी हो सकता है कि इसका गूदा घीमें तलकर औषधके तौरपर खानेसे यह नाम दिया गया हो. अबभी कितनेही आदमियोंको इस प्रकारसे खाते हुए हमनें देखा है दक्षिणमें ऐसी रीत है कि नवीन जन्मे हुए बालकको, एक या दो दिनतक, घीकुवारकी पत्तियोंको अंगारपर भूनकर उनका पतला रस निकालते हैं और उसमें थोडा गुड डालकर पिलाते हैं. और इसके बाद उस बालकको उसकी माका दूध पिलाना शुरू करते हैं. कार्तिक-अगहनके लगभग घीकुवारकी पत्तियोंके बीचसे फूलोंकी नाल निकलती है जिसके अन्तमें फूलोंके गुच्छे लगते हैं इस नालको महाराष्ट्र भाषामें शेलार कहते हैं इनके ऊपरका पतला छिलका निकालकर अंदरके गर्भभागकी शाक बनाकर खाते हैं यह शाक बहुत स्वादिष्ट होती है. फूलोंके गुच्छे घीमें तलकर खाते हैं. यह शाक फरमाइशी होनेसे बहुत महँगी बिकती है पंजाब और गुजरातमें घीकुवारके टुकडोंमें निमक मिलाकर उनका अचार बनाते हैं. जिसकी अग्नि मंद पडगई हो उसको यह अचार लाभदायक है.

घीकुवार हिंदुस्थानमें प्रायः सब जगह पैदा होती है. युरोपियन उद्भिज्जशास्त्रज्ञोंनें इसकी तीन जातिएं मानी हैं. उनमेंसे दो जाति हिंदुस्थानमें पैदा होती हैं. तीसरी जाति जिसेस 'ब्रिटिश फॉर्मोकोपियो'का 'अॅलो सोकूट्रीना' नामका एलुवा बनता है, वह हिंदुस्थानमें नहीं होती. उक्त तीनों जातियोंका वर्णन इस प्रकार है.

इंच होती है. इसके पत्ते दूसरी जातके घीकुवारकी तरह खड्गाकार और चौडेसे होते हैं. उनकी लंबाई १½ से २½ फूटतककी होती है. पत्ते गावदुम और नोकीले होते हैं. उनका रंग हरा होता है और पृष्ठभागपर सफेद दाग होते हैं. पुष्पनाल लंबी होती है. और उपपत्र यानी अंदर जो छोटे २ पत्ते निकलते हैं वे बरछीकी तरह सकरे होते हैं. नालके निचले भागमें हरे और उपरी भागमें पीले फूल लगते हैं. फूलोंकी अन्तर्वेटिकाकी गरदन छोटी होती है और उसके दाँत लंबे होते हैं. नरकेसर वटिकासे ऊपर निकले रहते हैं.

मोकाकी तरफसे जो एलुवा बंबई आकर यहांसे यूरपको और रवाना होता है उसका अधिकांश हबशी घीकुवारके रसका बना हुआ होता है. और असल यमानी, Aloes Perryii जातकी घीकुवारसे बनता है.

एलुवाकी रचना और उसका बाह्यस्वरूप-बाजारमें दो तरहका एलुवा मिलता है. एलुआ, घीकुवारका सुखाया हुआ स्वरस अथवा उसके पत्ते उबालकर किये हुए क्वाथका निष्कर्ष (Extract है यह हमनें ऊपर सूचित किया ही है. 'सोकोट्रीन' एलुआ सबसे बढियां माना जाता है. यह ऊपरकी तरफसे कठिन और कुछ कालासा होता है. इसको तोडनेपर टूटी हुई तरफसे चिकना और रालके नांई चमकदार दीखता है. इसमें एक प्रकारकी खुशबू होती है और खानेमें बहुत कडुआ होता है. यह झांझिबारकी तरफसे बंबई आता है और यहांसे विलायत भेजा जाता है. (२) जाफराबादी एलुआ जाफराबादमें तैयार होता है. उसकी गोल और दोनों तरफसे चपटी बडी २ टिकियें होती हैं. इसका उपयोग हिंदुस्थानहीमें विशेष होता है. इस जातका एलुआ पश्चिमी-हिंदी--महासागरके बार्बाडोस, क्युरेशो वगैरह टापूओंमेंसे "सोथम्टन्" की तरफ भेजा जाता है.

उसका रंग न विशेष लाल होता है न काला. तोडनेपर चिकना और चूर्णमय दीखता है. उसको तेज खट्टी गंध आती है; और खानेमें दूसरे एलुवेसे कम कडुआ होता है. दोनों जातका एलुआ शराबके मन्दार्कमें Proof spirit पिघल जाता है. ठंडे पानीमें वह कुछ कुछ पिघलता है. एलुवेको शराबमें भिगोकर उसका पतला टुकडा खुर्दबीनके द्वारा देखनेसे उसमें लंबे सूच्याकार स्फटिक देखनेमें आते हैं. दूकानोंमें मिलनेवाले एलुवेका दवामें उपयोग करने पूर्व उसे पानीमें पकाकर उसके अंदरका रद्दी भाग निकालकर फिरसे गाढा बनाना पडता है. अंग्रेजी रसायनवेत्ता और दवा–बेचनवाले इसी प्रकारसे शुद्धकिये हुए एलुवेका उपयोग करते हैं. वे लोग विना परीक्षा किये इसे नहीं बरतते.

घीकुवारके (एलुवेके) रासायनिक गुण–सोकोट्रीन एलुवेमें एक कडुआ सत्त, गोंद, वनस्पतियोंमें रहनेवाला अल्बुमेन और एक विना नामका खट्टा और कुछ सुगंधी तेल इतनी चीजें रासायनिक पृथक्करण करनेसे मिलती हैं. उक्त तेल तापमान यन्त्रके २७० सेंटिग्रेड अंशपर उबलने लगता है और उसका विशिष्टगुरुत्व (Specific gravity) ०८६३ होता है. एलुआ ठंडे पानीमें नहीं पिघलता. किन्तु गरम जलमें उसका बहुतसा हिस्सा पिघल जाता है. उसको पानीमें पिघलाकर वह पानी कुछ देरतक निश्चल रख देनेसे उसके तलमें राळके सदृश कोई चीज जमी हुई देख पडती है. ऊपरका जल अम्लधर्मी (acidin chemical re-action) होता है. क्षारोदक मिलानेसे तले जमी हुई चीजका रंग गहरा लाल होता है. ब्रोमीन मिश्रित जल मिलानेसे वह अच्छा खासा पीला होता है. शराबके मन्द अर्कमें एलुआ पिघलनेपर नीचे जो द्रव्य जमा हुआ होता है उसको मलमल्की मोटी तहमें (चार परतकी) दबानेसे जो चीज शेष रह जाती है उसीको अंग्रेजीमें 'अलोइन' कहते हैं. और यही एलुवेका मुख्य उपयोगी अंश है.

एलुवेमेंसे, जो सत्त निकलता है उसको अंग्रजी रसायनशास्त्रवेत्ता-ओंने घीकुवारके जातिभेदसे Nataloine और Barbaloine (नटलॅाइन्-बार्बेलॅाइन्) ये नाम दिये हैं. फ्लूकिगर और शेनस्टेन साहेबने अलोइन सत्तका पता लगाया और उन्होंनेंही भिन्न २ जातिके एलुवोंमेंसे पूर्वोक्त रासायनिक क्रिया करके, भिन्न भिन्न सत्त निकालकर प्रत्येक जातिके एलुवेकी तत्वरचना निश्चित की. प्रत्येक जातीमें प्रत्येक तत्वका प्रमाण भिन्न २ पाया गया. स्टेनहौस साहबनें (ई. स. १८५७में) बार्बेडोस एलुवेकी तत्वरचना C.17,H.18,O,7,

इसप्रकार ठहरायी है. और इसीको पीछेके सब परीक्षकोंनेंभी स्वीकार कर लिया है. सोकोट्रा एलुआ, बार्बेडोस एलुआ और नेटाल की तरफका एलुआ इनतीनों प्रकारके एलुओंमें थोडा फरक होता है और वह फरक प्रत्येक जातिमें अलोइन नामका सत्त, गोंद और पानी इनका जो कम-जियादह प्रमाण होता है उसपर निर्भर है एलुवेमें सेंकडा पीछे २८ अंश 'अलोइन' होता है. यह शुद्ध अलोइन रेचक है. इसकी बहुत सूक्ष्म मात्रा यानी ½ से १ रत्तीतक किसी चीजके साथ देनेसे विना पेचिश या मरोडके खुलासा दस्त होते हैं.

घीकुवार-ठंढी, कडवी, मंदगंधी, रसायन, अग्निदीपक, भेदक मधुर, पुष्टिकर, बलकर, वृष्य, विषदोष, कफपित्तज्वर कफ, पित्त दमा, खांसी, पिल्ही, कुष्ठ, गुल्मवात, यकृत, ज्वर, ग्रंथि, त्वग्दोष विस्फोट, रक्तविकार, अग्निदग्धव्रण, और रक्तपित्त इन विकारोंको दूर करती है. फूल-भारी, और वायु, पित्त व कृमि इनका नाश करते हैं एलुआ-सारक, रेचक, और (स्त्रियोंकेलिये) आर्तवशुद्धि कर है. (१) विषमज्वरमें-घीकुवारका कंद दस मासे किंचित गरम जलमें पीसकर पिलाना. कै होकर कफाशय शुष्क हो जावेगा

और ज्वर दूर होगा. (२) पिलही और अपची अथवा गण्ड-माला पर-घीकुवारका रस हलदी मिलाकर पिलाना. (३) खांसी पर-घीकुवार आंचमें भूनकर उसका रस निकालना और उस अडूसेके पत्तोंका रस अथवा शहत और पीपल व लौंगका चूर्ण मिलाकर पीना. (४) कफ और खांसीके लिये-घीकुवारका गूदा शहत अथवा सेंधा निमक और हलदी मिलाकर खाना. (५) अभिष्यन्द नामक नेत्ररोगमें- (Catarrhal Congunctivitis) घीकुवारका गूदा पानीमें मींजकर उसीमें फिटकडीकी खील और अफीम मिलाकर उस पानीको छान लेना और कपडेकी पुटरियासे आंखपर छोडते रहना. अथवा घीकुवारके रसमें फिटकडीकी खील मिलाकर पलकोंपर उसका लेप करना. इससे आंखोंकी अन्तस्त्वचाकी खाज कम होती है और जमा हुआ खून फैल जाता है. अथवा घीकुवार और चीतेके पत्ते एक जगह पीसकर लेप करना. (६) स्तन-रोगमें-घीकुवारका कंद पानीमें घिसकर उसमें थोडी हलदी मिलाकर स्तनोंपर लेप लगाना. (७) शरीरमें भिनी हुई गरमी, प्रमेह, पुराना ज्वर, और कच्ची धातु निकालनेके लिये घीकुवारका लुवाब हरबार ४ मासेसे १ तोलेतक निकालकर उसमें चार रत्ती जीरा और दो रत्ती काली मिर्च पीसकर मिलाना और सेवन करना. (८) अग्निदग्धव्रणपर-घीकुवारका लुवाब लगानेसे तत्काल जलन बंद होती है. अथवा घीकुवारका गूदा कपडेसे छानकर उसके लुवाबमें मक्खन कुछ तपाकर मिलाना और पंखसे जखमपर लगाना. (९) जखममें कीडे पडेहों उनका नाश करनेके लिये-घीकुवारका कंद गोमूत्रमें पीसकर, दिनमें दो तीन बार लगाना. (१०) कानमें अत्यंत जलन होती हो तो. घीकुवारका लुवाब कपडछन कर उसका कुछ रस कानकेभीतर छोडना और उसका गूदा कानके ऊपर रख देना. (११) कमलरोगपर- घीकुवारके कंदका रस निकालकर

उसमें थोडा घी मिलाकर उसकी 'नास देना. कांवरसे आंख पीले पड गये हों तो इस नाससे साफ होते हैं (१२) हाथके वलुएकी सूजन और पाकपर–घीकुवारका पत्ता कुछ हलदी मिलाकर सेंककर बांध देना. (१३) बच्चोंके पेटमें डब्बा रोग होता है उसपर एलुआ और डिकामाली दोनोंको पानीमें घिसकर पिलाना. (१४) अस्वाभाविक कारणसे स्त्रियोंका रजोदर्शन रुक जानेपर उसको फिरसे शुरू करनेके लिये–घीकुवारका रस हररोज पिलाना (मायसूरकी तरफके लोग यह इलाज बहुत करते हैं). (१५) घीकुवारका पाक–घीकुवारका गूदा कुछ देरतक पानीमें भिगो रखकर कपडेसे पोंछ लेना और उसका अन्यान्य पाककी तरह पाक बना लेना. इसके सेवनसे शरीरकी गर्मी, अम्लपित्त, दूर होकर धातुपुष्ट होती है. (१६) घीकुवारका रस अथवा एलुआ गरम पानीमें मिलाकर जखमपर लगानेसे उसकी पीडा तत्काल बंद होती है. (१७) कुमारी आसव—घीकुवारका रस २०४८ तोले, गुड ४०० तोले भंग १०० तोले और पानी १०२४ तोले इन सबको मिलाकर अग्नीपर रखना. जब सबका एक चतुर्थांश कषाय शेष रह जाय तब उतारकर छान लेना और उसमें २५६ तोले शहत और ६४ तोले धायके फूल मिलाकर चिकने घडेमें भरना और उसमें पुनः जायफल, लौंग, कबाबचीनी, बालछड, चव्य, चीता, जावित्री, काकडाशिंगी, बहेडा पुष्करमूल इनमेंसे हरेक चीजका चार २ तोले कल्क और दो तोले ताम्रभस्म और दो तोले लोहभस्म मिलाकर घडेका मुंह बंदकर उसे जमीनमें या धानके ढेरीमें २० दिनतक गाड रखना. उसके बाद बाहर निकालकर रोगीकी शक्ति और अग्नि देखकर यथोचित प्रमाणसे देना. इसके सेवनसे पांचों प्रकारके श्वासरोग, खासी, क्षय, उदररोग, बवासीर वायुके रोग, मिरगी, आदि अनेक बडे २ रोग नष्ट होते हैं. स्त्रियोंके गुल्म रोग और नष्टपुष्प अर्थात् रजोदर्शनका रुक जाना १५ दिनमें दूर होते हैं.

देनेसे उसकी जड हीनसत्व होती है. दो वर्षके पुराने वृक्षोंकी जड मिलनेसे वह अधिक गुणकारी होती है. कहते हैं कि अंधेरी जगहमें रखनेसे वह बिगड जाती है." मद्रासी रुमाल रंगनेमें अच्छुक वृक्षकी जडके साथ पितपापडेकी जडका उपयोग करते हैं. इस रंगको पक्का करनेके लिये उसमें फिटकडी मिलाते हैं. कसीस मिलानेसे काला रंग होता है. और कुसुंबा, नीबूका रस और सोडा मिलानेसे कच्चा लाल रंग बनता है.

औषधिप्रयोग. (१) पित्तज्वरपर- पितपापडेका कषाय पीपरका चूर्ण मिलाकर देना. अथवा पितपापडा, चन्दन, खस और सोंठ इनका क्वाथ पिलाना. (२) पंचभद्र-(वातपित्तज्वरमें) पितपापडा, नागरमोथा, गुरच, सोंठ और चिरायता पांचों समभाग लेकर कषाय बनाकर पिलाना. (३) दूषितवायुजन्यज्वरपर-पितपापडा, ब्राह्मी और हंसराज इनका कषाय देना. (४) पित्तपर-पितपापडेके पत्तीका रस और गौका ठंढा दूध मिलाकर मिसरी डालकर पीना अथवा पितपापडा और सोंठका कषाय पिलाना. (५) पित्तसे सिर भारी हुआ हो तो पितपापडेका रस, करेलेके पत्तीका रस और गौका घी सबको मिलाकर सिरपर मालिश करनेसे तत्काल सिर हलका हो जाता है. (६) शोपरोगपर—पितपापडेका काढा पिये. (७) सिरका सन्ताप, आंखोंकी जलन और कैपर-पितपापडेका काढा शहत मिलाकर पीना (८) पथरीपर- (अश्मरी) ४ तोले पितपापडेका चूर्ण गौके मट्ठेमें मिलाकर पीना. यदि ताजा पितपापडा मिल सके तो उसका रस निकालकर गौके मट्ठेके साथ पीना. (९) पित्तसे के होती हो तो-पितपापडेका काढा शहत डालकर देना. (१०) गर्भशल्य बढनेकेलिये- पितपापडेका काढा मिसरी मिलाकर पिलाना.

बिलाईकंद (विदारीकंद)

संस्कृत नाम—विदारिका, स्वादुकन्दा, सिता, शुक्ला, शृगालिका,

सं. विशाल. म. सुरमेंढ़ा.
सं. जातीफल. म. जायफळ
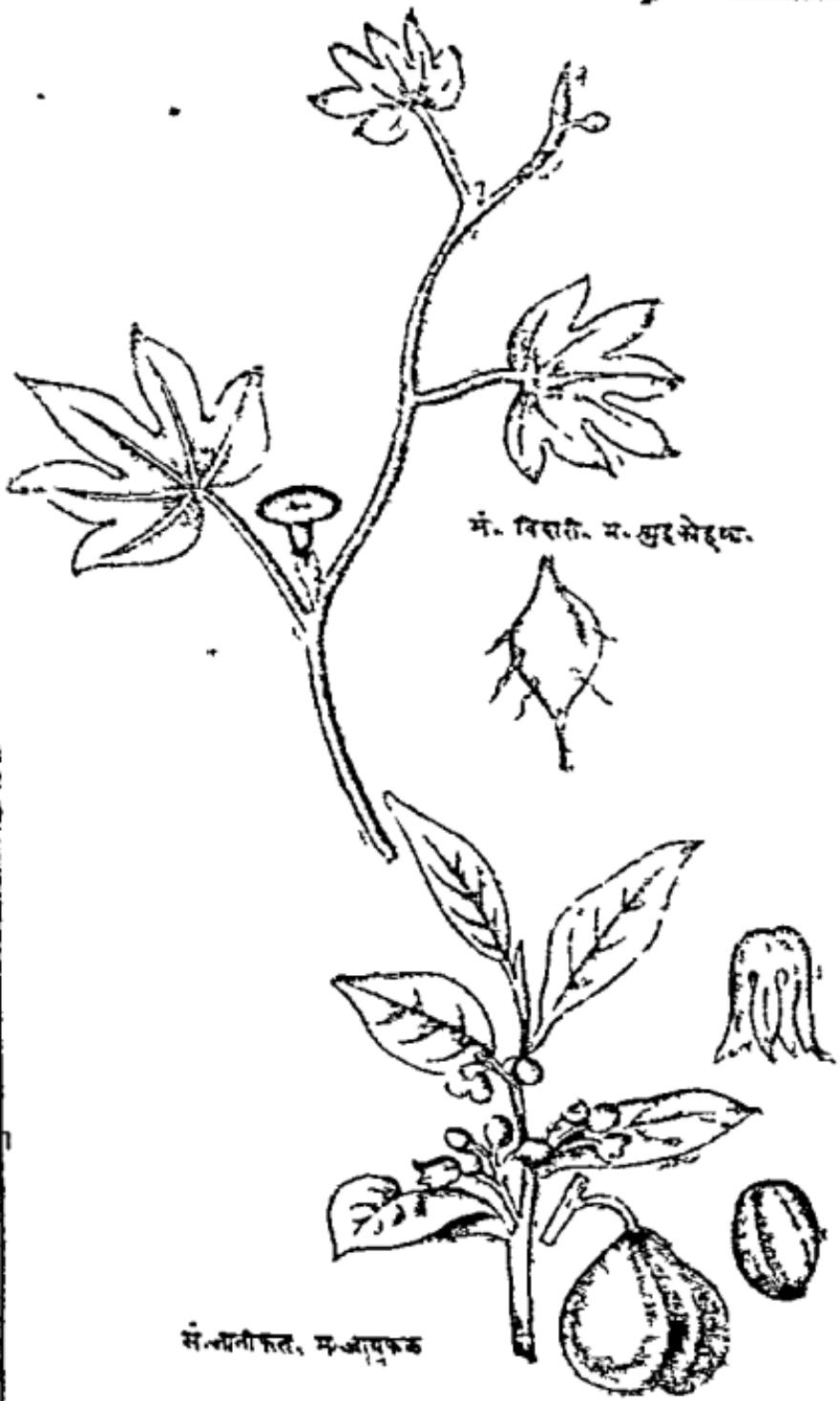
ई. स. १९३४ में (Garc a de rta) गार्सिआ डि ओर्टा, गोवाके गव्हर्नरके डाक्टर थे. उन्होंने अपने अनुभवसे घीकुवारका अधो लिखित कल्प लिख रखा है. घीकुवारके पत्ते ८ तोले, निमक १ तोला, दोनोंको १० तोले पानीमें उबालकर चौथाई काढा बनाना और उसमें २–२॥ तोले मिसरी मिलाकर प्रतिदिन बहुत सवेरे लेना. यह स्वास्थ्यरक्षा केलिये बहुत उपयोगी है. इनदिनों डॉक्टरी दवा-ओंमें एलुवेका बहुत उपयोग होता है. Pil aloes of myrrha, Pil Colocynth Co. Pil Rhei Co Decofi aloes Co, vinum aloes इन अंग्रेजी दवाओंमें एलुआ होता है.

पितपापडा. (दवनपापडा)

संस्कृतनाम- पर्पट, चरक, रेणु, तृष्णारि, खरक, रज, शंति, शीत प्रिय, पाशु, कल्याण, वर्मकटक कुशशाख, पपर्टक, पित्तारि, रक्तपुष्प-क, सुतिक्त, कटुपत्र, कवच, वरतिक्त, वर्मकंट, वरक, अतिसारहा, शिववल्लभ, चर्माह्वय, सूक्ष्मपत्र, चर्मकण्टक, यवकंट, मृष्टिक, फलकंटक, घर्मखेटक. म. पित्तपापडा. गु. खदमळियो, पीतपापडो. बं. क्षेतपाप (व) डा. क. पर्पाटक, कल्लुमल्वसिगे. ते. पार्पाटकमु. फा. शाहतरा. अ. शाहतरज, वक्लतलमलीक, औरकल—जडपापुडा ला. Glossocardia boswellia ग्लोसोकार्डिया बोसवेलिया.

वर्णन—यह एक क्षुप है. यह सीधा ३।४ हाथ ऊंचा बढता है. इसपर बारीक २ काटे या रोवे होते हैं. पीतपापडा दो प्रकारका होता है. घासपीतपापडा घास जैसाही होता है और उसपर रोवें होते हैं. पीतपापडेके पौधे वर्षाकालके आरंभमें उगते हैं और जाडेके मौसममें सूख जाते हैं. इसके पत्ते लंबे, सकडे और नोकीले होते हैं. इसपे सफेद रंगके छोटे २ फल लगते हैं. कितनीही जगह नीले और लाल फूल देखे गये हैं. पीतपापडेका क्षुप सूख जानेपर काला पडता है. पीतपापडा आपसेआप उगता है. कोरो माडेल किनारेपर

(Coast of Codomandrl) और उसमेंभी विशेषतः नेलूर, मच्छलीपटन वगैरेह जिलेमें रेतीली जमीनमें यत्नपूर्वक इसकी खेतीभी बहुतसी करते हैं. दोनों जातके पितपापडेके गुण एकहीसे हैं. इसके पांचों अंगोंका औषधिमें उपयोग होता है. पितपापडेके पत्ते छातीमें जमा हुआ बलगम निकालनेके लिये अच्छे उपयोगी हैं. सुखाए हुए पत्तोका चूर्ण आटेमें मिलाकर उसकी रोटियें बनाकर श्वास और क्षय रोगियोंको खिलनेकी रीति कई जगह देखी गई है. इसकी जड लंबी और नरिंगी रंगकी होती है. सूती कपडेको उमदह पक्का रंग देनेके काममें वे बहुत उपयोगी हैं. जामनी और भूरा नरिंगी रंग इनसे बनता है. छींटोंका पक्का लाल रंग पितपापडेके जडकी छालसे बनाते हैं. इसकी जड सिलोनसे देशावरोंमें बहुतायतसे रवाना होती है. रंगके लिये, लगाये हुए वृक्षोंकी अपेक्षा जंगलमें आपसे आप उगे हुए वृक्षोंकी जड अधिक पसंद करते हैं. जंगली पितपापडेकी जड छोटी होती है, और उसमेंसे चौथा हिस्सा रंग निकलता है. समुद्रके किनारे खुश्क, हलकी और रेतीली जमीनमें पितपापडेके क्षुप खुदबखुद उगा करते हैं. लगाये हुए पौंवेकी जड पतली, एकसे दो फूट लंबी होती है और उसके किनारेपर लकीरें होती हैं. पितपापडेका लाल रंग मंजीठके लाल रंगसे मिलता है. मद्रासकी तरफके रंगरेज लोग इसको बहुत बरतते हैं. मद्रासकी इससे पिछली प्रदर्शिनीमें पितपापडेकी जडका नमूना रखा गया था. उसके विषयमें परीक्षकोंने आगे लिखी हुई सम्मति दी थी. "रंग केवल जडकी छालमें होता है. अंदरका सफेद भाग निरुपयोगी है. मद्रास हाथेके मदुरा शहरके रंगरेज, वहांकी मशहूर लाल पगडियें इसी जडके रंगसे रंगते हैं. लगाये हुए वृक्षोंकी अपेक्षा जंगली वृक्षोंकी जडमेंसे ; रंग अधिक निकलता है. और उसका कारण यह है कि जिस प्रकार अधिक वृष्टीसे वृक्षोंकी जड बिगड जाती है उसी तरहपर लगाये हुए वृक्षोंको अधिक पानी

पयस्विनी, विदारी. वृष्यवल्लिका, भूकूष्माण्डी, स्वादुलता, गजेष्टा, रिवल्लभा, कंदफला, इक्षुविदारी, वल्लिशृंगकफल. श्रेष्ठकन्दा. इक्षुवल्लरी. न्दवल्ली, वृष्यफला, इक्षुकन्दा, इक्षुलता, वृष्यपर्णी, क्रोष्टी, गजवाजिप्रिया, यस्विनी, क्षीरवल्ली, पयःकन्दा, पयोलता, क्षीरकन्दा. गु० फगवेलानो कंद, भोंलुं. बं. भुई कूमडा. क. नेऽकुंबल. ते. नेलगुंबुडु. ता. मद्दापलतिगु. ला मुतालक्षांता. औत्कल. भुईकरवारु. ला. Ipomoea Digitata ायपोमिया डिजिटेटा (Batatas paniculata.)

वर्णन—विदारीकंदकी वेल होती है और वह बहुवर्षायु होती है. ंद्रस्थानमें प्रायः सर्वत्र यह वेल उत्पन्न होती है. बगीचों तथा खेतोंके ाडोंमें और झाडोंमें यह वेल बहुतायतसे होती हैं. विदारीकंदकी दो जाति . एक सफेद अथवा दूधिया विदारी कंद और दूसरा साधारण विदारीकंद. ांस्कृतमें जिसे पयस्या कहते हैं वह दूधिया विदारीकंद है. यहांपर हमनें ो चित्र दिया है वह दूधिया विदारीका है. साधारण विदारीकी पत्तियां ट्वासुकी वेलकी पत्तियोंके नाई त्रिदल होती हैं. साधारणविदारीको कोंक- में 'भेंदरीकी वेल' कहते हैं और ये वेलें घोडे बडे चावसे खाते हैं. इसी ारण, इसवेलको संस्कृतमें वाजिप्रिया कहा है. इसीके अनुसार मराठीमेंभी सको 'घोडवेल' कहते हैं. हाथिकोभी ये वेल प्रिय होते हैं और इसीसे नको गजेष्टा, गज प्रिया आदि सार्थक नाम दिये गये हैं. विदारीके प्रायः ाम सार्थक हैं. स्वादुकन्दा, सिता, वृष्यकन्दा स्वादुलता, इक्षुकन्दा आदि ाम विदारीकंदमें रहनेवाले वृष्यत्व और माधुर्य ये दो प्रधान गुण द्योतन रते हैं. दूध विदारीकंदके पत्ते तरबूजके पत्तोंके सदृश—हाथके पंजेके ाँति पांच खंडोंमें विभक्त होते हैं. प्रत्येक खंड २ से ६ इंचतक लंबा होता है. पत्ते वेलके दोनों और आमने–सामने न लगकर ऊपर नीचे लगते हैं. पत्तोंके डंठल लंबे होते हैं. पत्ते चिकने होते हैं और उनकी किनार अ- खंड होती है. वर्षाकालमें इसपर फूलोंके गुच्छ लगते हैं. वे पत्तोंके बगलमेंसे नेकलते हैं. फूलोंका आकार खासा बडा होता है और रंग गहिरा लाल–

जामनी रहता है. दूधिया विदारीवेलपर फलियें लगती हैं. उनकी शाक बनती है. कंदकी भी शाक बनाते हैं. छोटे छोटे कंद बच्चे बडे प्यारसे खाते हैं. विदारीकंदका बाहरी अंग राखके अथवा मैले पीले रंगका होता है और उसपर गांठेंसी उठी हुई होती हैं. उसको वेडा चीरनेपर उसके पृष्ठ भागपर प्रतिवार्षिक वृद्धीके वर्तुल दीखते हैं. उसके परिधका और दुग्धवाहिनीके कटे हुए मुख अथवा द्वार दिखाई देते हैं और उनमेंसे दूध जैसा रसीला पदार्थ निकलता रहता है. विदारीकंदका स्वाद मीठा-कषैला लगता है और खानेसे कुछ देरकेबाद जीभमें कुछ चिरपिरापन मालूम होता है. साधारण विदारीकंद गरम होता है. उसकी अपेक्षा दूधिया विदारीकंद गुणोंमें श्रेष्ठ है. दूधियाकंदको खुरचकर उसका बहुत अच्छा हलुआ बनाते हैं.

गुणदोष-दूधिया विदारी (वेल)-मधुर, खट्टी, कषैली, वृष्य, शुक्रोत्पादक, पौष्टीक, दुग्धप्रद, चरपरी, रसायन, बलकर, ठंढी. पेशाब लानेवाली, कफकारक, स्निग्ध, वर्णकारक, भारी, आवाज सुधारनेवाली, और पित्तरोग, रक्तदोष, पित्तशूल, वायु, दाह, मूत्रमेह, इनका नाशकरनेवाली है. कंद-मधुर, ठंढा, वृष्य, स्निग्ध, पौष्टिक, धातुवर्धक, बलकर. कफकर, दुग्धोत्पादक (स्त्रियोंकेलिये), भारी, रसायन, मूत्रल, आवाजको हितकर रूक्ष, गर्भप्रद, और पित्त, वायु, रक्तदोष, दाह, वाती, इनका नाशक है फूल-वृष्य, शीत, रस और पाकावस्थामें मधुर, कफकर, वातल, भारी, पित्तनाशक हैं.

औषधिप्रयोग-(१) बल-पुष्टीके लिये-दूधिया विदारीकंदका चूर्ण १ तोला नित्यप्रति घीके साथ चाटकर ऊपर दूध पीना. इससे वृद्धभी युवा हो सकता है. (२) रक्तार्श (खूनी बवासीर) पर-विदारीकंद और तिलोंका चूर्ण, शहद और दूधके साथ पीना. (३) प्रसूत स्त्रियोंके स्तनोंमें दूध पैदा होनेके लिये-सफेद विदारीकंद दूधमें पीसकर उसके रसमें मिसरी डालकर पिलाना. (४) प्रमेहपर-विदारीकंदके पत्तोंका रस पावभर और

भूम्याहुली (सनायका भेद) चूर्ण ६ मासे अथवा विदारीकंदका रस पावभर मिसरी और जीरेका चूर्ण मिलाकर पिलावे. (५) मरमक रोगपर–विदारीकंदका रस, दूध और घी मिलाकर पिलाना. (६) बहुमूत्रपर–विदारीकंदका चूर्ण घीमें तलकर उसमें उसीकेबराबर लौंग इलायची, जायफल जावित्री, गांठिया पीपरमूल और दारचीनी इन सबचीजोंका चूर्ण और सब- ; चौथे० हिस्सेके बराबर सोंठ और सोलवां हिस्सा पीपरका चूर्ण मिला- र इस सारे मिश्रणके बराबर बूरा डालना और फिर घी मिलकर एक क तोलेभरकी गोलियां बना रखना. सबेरे और रात्रिको सोते समय एक क गोली लेना. (७) मस्तकशूलपर मामूली विदारीकंद सिलपर घिस- र सिरपर लेप लगाना. (८) विषूचिकापर–दुधिया विदारी कंद ३ देनतक खाना. (९) शरीरमें चादीसे सनके मारती हों तो-क्षीरवि दारीकंदका रस मिसरी मिलकर पीना. (१०) पौष्टिकपाक–क्षीरविदारी कंदका चूर्ण कढाईमें डालकर घीमें भूंज लेना और उसमें किशमिश, बादाम, चैरोंजी, पिस्तां, लौंग, इलायची, जायफल, गोखरू, किवांचके बीज, शता- वरी और मुसली आदि मसाला मिलाकर मिसरीकी चाशनी बनाकर उसमें छोड देना. सूखनेपर उसके टुकडे करके रख छोडे और प्रतिदिन २–३ तोले खाकर ऊपरसे गौका दुधपीना. इससे उत्तम पुष्टि प्राप्त होती है (११) विदारीकंदका चूर्ण मधमें मिलाकर पीनेस प्रसूत स्त्रीके स्तनोंमें दुध बढता है (१२) कमजोर, कृश और जिन्हें अन्न ठीक ठीक नहीं पचता ऐसे बालकों को विदारीकंद गेहुंका आटा और जौका आटा तीनों समभाग लेकर उसमें दूध, घी, बूरा और शहत मिलकर खाद्य बनाकर देना. (१३) विदारी- कंदके चूर्णको विदारीकंदके स्वरसके बहुतसे पुट देकर प्रतिदिन छमासेसे एक तोले तक चूर्ण घी और शहतमें मिलाकर लेना. इससे उमदह धातु पुष्ट होती है (१४) मूत्रकृच्छ्रपर–विदारीकंद, गोखरू, मुलहटी, और नागकेसर, चारों चीजें समभाग लेकर उनका काढा बनाना और उसमें शहत मिलाकर पीना. इस क्वाथमें रस सिन्दूर मिलाकर देनेका पाठभी कहीं कहीं मिलता है.

जायफल.

संस्कृत–जातीफल, जातिसस्य, शाल्क, मालतीफल, मज्जासार, जातिसार, पुट, सुमन फल, कुसुमभर्त्र, जातिकोश, जातिज, माळती, सुन, मद शौंड, जातिसुत, कोपक. गु. जायफळ. बं. क. जायफल. तै. जाजिकाया. ता. जोडिकाय. तु. जाजिकायि, मला. जातिकामरं ब्रह्मी–जादिक्षु फा. जोझबुवा अ. जोझउछती. इं. Nutmeg ला. Myristica Moschata मिरिस्टिका मोस्केटा.

जावित्री.

संस्कृत–जातिपत्री, जातिकोशा, सुमन पत्रिका, माळतीपत्रिका, सौमनशायिनी, जातिपर्णी, सौमनसा, गु. जावत्री. ब. जायित्री. क. जायपत्री. तै. जाजिपत्री. फा. जवित्री, बजवार अ. विसवासा. इं. Mace मेस. ला. Myristica Fagrans मिरिस्टिका फेग्रन्स.

वर्णन. जायफलका वृक्ष बहुत बडा होता है. इसवृक्षकी ८० उपजातियें हैं ऐसा उद्भिज्जपरीक्षकोंका मत है. उनमेंसे हिंदुस्थान और और मलय द्वीपकल्पमें ३० जाति पाई जाती हैं इसवृक्षकी असली जन्मभूमि एशिया खंडके पूर्वभागावस्थित मलाक्का टापू और बाडा नामक प्रदेश है. परंतु इस समय सुमात्रा, सीलोन, जावा, पिनाग, और पॅसिफिक तथा भारतीय महासमुद्रके टापुओंमेंभी इसकी पैदाइश बहुतायतसे होती है. ई. स. १७९६ से १८०२ तक बाडा और मलाक्का टापू ईस्ट इंडिया कंपनीके अधिकारमें थे उन दिनों रॉक्सबर्ग साहबने वहांसे जायफलके कितनेही पौधे मंगवाकर कलकत्तेके पास हावडेके सरकारी बागमें लगाये थे. वहांकी जलवायु उन पौधोंको इतनी अनुकूल आगई कि, सन १८०९ में उस बागमें ११०० वृक्ष खडे थे और उनपर जायफल और जावित्री भी उमदह लगी थी. जायफलवृक्ष दो प्रकारके होते हैं. नर और मादी. मादीवृक्षपर छोटी मंजिरीपर एकाकी फल लगते हैं. इस जातीके वृक्षके पत्ते चौडे, बर्छीनुमा, चिकने और मोटे होते हैं. जिसके पत्ते बडे होते हैं उस जातिको Myristica Macrophylla कहते हैं. जायफलके पत्ते हाथपर मलनेसे किंचित् सुगंध आती है. पत्ते २

६ इंच लंबे और १॥ इंच चौडे होते हैं. ये पत्ते ऊपर नीचे लगते हैं. आमने
सामने नहीं. इसपर छोटे, सफेद रंगके, और-घंटाकृति फूल लगते हैं. उन्हें
गोश नहीं होता है.

जायफलका व्यास २ इंच होताहै और आकार अच्छे खासे अमरूतके
बराबर होता है. इसकी त्वचा सफेद, सुगंधी और ½ इंच मोटी होती है.
जब फल पकता है तब यह ऊपरका छिलका फट जाता है और अंदरके
बीजसे लिपटा हुआ सुर्ख जालीदार वेष्टन दिखाई देता है. यह वेष्टनही
जावित्री है. जायफलपर जिस जिस जगह जावित्री सटी हुई होती है उस
उस जगह उसके चिन्ह स्पष्ट दिखाई पडते हैं. जायफलकी रचना लगभग
नारियलकीसी होती है. नारियलके ऊपर बाहरकी तरफ जिस प्रकार मोटा
छिलका होता है और उसके अंदर कवच होता है उसी प्रकार जायफलके
ऊपर बाहर मोटा छिलका और अंदर पतला कवच होता है. घीमें डाल
रखनेसे जायफल वर्षोंतक ज्यों का त्यों रह सकता है. जावित्रीमें एक सुगंधी–
उडजानेवाला तेल सेंकडेमें ८ इस प्रमाणसे मिलता है. इसके सिवाय एक
प्रकारका गाढा तेलभी निकलता है. उडनेवाले तेलकी त्वचापर मालिश करनेसे,
वादीसे सनकें मारती हों तो वे बंद होजाती हैं. गाढातेल, दाह उत्पन्न
करनेवाले तीक्ष्ण पदार्थोंके साथ मिलानेके काममें आता है.

जायफलकी घटना—जायफलमें तवाशीर, अलबुमेन, गाढा तेल और
सुगंधी अथवा कुछकुछ उडजानेवाला तेल (सौमें आठके हिसाबसे) ये चीजें
मिलती हैं. यह तेल पतला और घासके रंगका होता है. इसकी रासायनिक
घटना (^{0} का) और (H है) एकत्र होनेसे बनी है. तापमानके १६९
सेंटिग्रेड गरमीपर यह तेल उबलने लगता है, इसमें ⅓ चरबी होता है. जो
जायफल ठोस, चिकना और भारी हो वह उत्तम और तौलमें हलका, अंदरसे
पोला और स्पर्शमें खरदरा हो सो घटिया समझना. उत्तम जायफल हिंदु-
स्थानमें बहुतही कम आते हैं वे प्रायः विलायत भेजे जाते हैं. उनका भावभी
२॥ रुपये पौंडतकका होता है. जायफलका गाढा तेल १०६ तापमान

अंशपर पिघलता है. चरबी १०१ ठंडे मद्यार्कमें और २८ गरम मद्यार्कमें पिगलती है. चरबी—ईथर, बेनझीन, अॅसेटिक ॲसिड, और वायसल्फाइड ऑफ कारबन इन अंग्रेजी दवाओंमेंभी पिगलती है. जायफलकी चरबी मोमबत्ती बनानेमें बहुत उपयोगी है. टॉमस क्रिस्टी साहब साबुन बनानेमेंभी इसका उपयोग करते हैं. जायफलकी चरबीसे बनेहुए साबुन और मोमबत्तीका व्यवहार लंडन और पारीसमें बहुत होता है.

अजीर्णमें जायफल दूधमें घिसकर पिलाना. आधा जायफल खानेसे नशा हो आती है. गरमीके दिनोंमें अजीर्णसे दस्त होने लगते हैं उसपर घीमें अथवा मक्खनमें ३ माशे जायफलकी बुकी मिलकर खाना. डॉक्टरोंके यहा ॲरोमेटिक पावडर नामका जो सुगंधी चूर्ण बनाते हैं उसमे जावित्रीका, और लवेंडरका अर्क बनानेमें जावित्रीके तेलका उपयोग करते हैं.-१ हिस्सा जायफलका तेल, ९ हिस्से मद्यके अर्कमें पकानेसे जायफलका अर्क निकलता है. ९ मासे जायफलकी बुकी खानेसे भ्रम और बेहोशी होती है ऐसा देखा गया है. विषूचिकामे तृषा लगती है उसपर जायफलका फाट (८ गुने गरम जलमें रात्रिको जायफलकी बुकी भिगो रखकर सबेरे छान लेना) पीनेमे तृषा शांत होती है. माताका दूध छुडातेसमय बालकोंको अनेक प्रकारके विकार होते हैं उनके लियेभी यह फाट लाभदायक है. जायपत्री उत्तेजक है. गठियाके दर्दमें जावित्रीका तेल हितकर है. हैजेमेंभी जावित्री खानेसे तृषा शांत होती है.

गुणदोष—जायफल—कसैला, चरपरा, वृष्य, दीपक, रसकालमें कडुआ, हलका, ग्राहक, हृद्य और स्वरके लिये हितू, और कंठरोग कफ, वायु, मेह, वातातिसार और मलदौर्गन्ध्यशामक, मुखका स्वाद बिगाडनेवाला, और कृष्णता, कृमि, खासी, कै, दमा, पीनस, हृद्रोग और शोष इनका नाश करनेवाला है. जावित्री—चरपरी, कडवी, सुगंधी मुखशुद्धिकारक, मधुर, वर्णकारक, हलकी, कांतिकर, रुचि।

ज्वर, उष्ण, और शरीरजाड्य, कफ, रक्तदोष, दमा, खांसी, कै, तृषा विष, वादी और कृमि इनकी नाशक है.

औषधिप्रयोग—(१) सिरदर्दपर—जायफल दूधमें घिसकर लेप लगाना. (२) नींद न आती हो तो—जायफल घीमें घिसकर पलकोंपर लेप लगाना. (३) नींद न आती हो, अतिसार और कै होती हो, तथा तृषा लगती हो तो—जायफल खानेको दो. (४) बच्चोंको शीतसे दस्त होते हैं उसपर—गौके घीमें जायफल और सोंठ घिसकर चटावे. (५) जुकामपर—गौके दूधमें अफीम मिलाकर उसीमें जायफल घिसकर नाक और मस्तकपर लेप लगाना. अथवा जयफल दूधमें घिसकर गरम करके सिरपर लेप लगाना. (६) हिचकी और कैपर—चांवल धोतेसमय जो जल निकलता है उसमें जायफल घिसकर पिलाना. (७) विषूचिकापर—३ माशे जायपत्री दूधमें पीसकर पिलाना. (८) तारुण्यपीटिका—(युवावस्थामें मुंहपर फुन्सियें निकलती हैं वे) पर—जायफल दूधमें घिसकर लगाना (९) दस्तोंपर—(अजीर्णजनित) एक तोला जायफलका चूर्ण करके गुडमें मिलाकर तीन तीन माशेकी गोलियें बांध रखे और आधे आधे घंटेके बाद एक एक गोली खाकर ऊपरसे गरम पाणी पिये. इससे दस्त बंद होते हैं. (१०) आमातिसार और अतिसारपर—जावित्रीका चूर्ण २ या २॥ मासे दहीके ऊपरकी मलाईमें अथवा गौके दहीमें मिलाकर लगकर सात दिनतक खाते रहना. इससे कैसाही दुर्धर अतिसार हो तौभी आराम हो जाता है. (११) पेट फूलता है और दस्त नहीं होता उसपर—नींबूके रसमें जायफल घिसकर खिलाना. इससे दस्त होकर पेट साफ होता है. (१२) कॉलेरामें शरीरभरमें और जिसमेंभी विशेषतः पिंडरियां वगैरहमें शूल होता है उसपर—एक जायफलका चूर्ण करके वह पावभर तिल्लीके तेलमें छोडकर उस तेलको पकावे. अच्छीतरह पकनेपर नीचे उतार छानकर शीशीमें भर रखे और जिस जगह शूल होता हो उस जगह मालिश करे. इससे

शूलतत्काल बंद होता है. (१३) जातीफलादिगुटिका-(कॉलेराप जायफल, सेंधानिमक, सिंगरफ, शुद्ध कपर्दिकभस्म, सोंठ, अफीम शुधी हु धतूरका बीज शुद्ध, और पीपर/ये सब चीजें समभाग लेकर नींबूके रस धतूरेके बीजके काथमें अथवा भांगके काथमें कई बार घोटकर ,रत्तीभरव गोलियें बनावे और एक तोला छाछ, चनेके बराबर भुना हुआ हींग अ माशाभर सेंधा नमक एकत्र करके उसमें एक गोली मिलाकर लेना. इस सेवनसे दस्त और कै तत्काल बंद होती है. यह गोली तांबुलके सा सेवन करनेसे वीर्य वृद्धि होती है. (१४) जातीफलादिवटी (अतिसारवट जायफल, छुहारा और शुद्ध अफीम तीनो चीजें समभाग, पानके रस खरलकर चनेके बराबर गोलियें बनावे. हरबार एक गोली छाछकेसाथ खाना इससे कैसाही जबरदस्त अतिसार शीघ्र बंद होता है.

कालादाना.

संस्कृत--नीलपुष्पी, कृष्णबीज श्यामबीज, श्यामलबीज. म. कालादाणा. बं नीलकलमी. फा. मिरचाई. अ. हब्बुनील. इं. Pale Blue Ipomia पेल ब्ल्यू इपोमिया ला. Pharbitis nil फार्बिटिस निल्.

वर्णन--कालेदानेकी वेल होती है. हिंदुस्थानमें प्रायःसर्वत्र पैदा होती है. इसवेलके कांड और टेनियें आश्रित वृक्षके इर्दगिर्द लिपटी हुई रहती हैं. कांड और टेनियें वर्तुलाकार होकर उनपर रोवें होते हैं इसके पत्ते कपासीके पत्तोंके भांति तीन खंडोंमें विभक्त (त्रिदल) होते हैं. पत्ते वेलके ऊपर नीचे लगते हैं. इसपर फीके नीले रंगके घंटाकार बडे बडे फुल लगते हैं. इसके फल नरम होते हैं. उनमें तीन खाने होते हैं. प्रत्येक खानेमें कालेरंगका त्रिकोणाकृति एक एक बीज होता है. इन्ही बीजोंको कालादाना कहते है. काला दाना छोटा और वडा दो जातिका होता है. दवामें बरतनेके लिये छोटा बीज अच्छा होता है. कालेदानेका चूर्ण काली मिरचके चूर्णके सदृश दीखता है. स्वाद किंचित मीठा होता है. चूर्णकी फंकी मारनेसे वह मुंहभरमें फिरक जाता है.

स नालपुष्पी म कागदाणा

स गुडची म गुळवेल
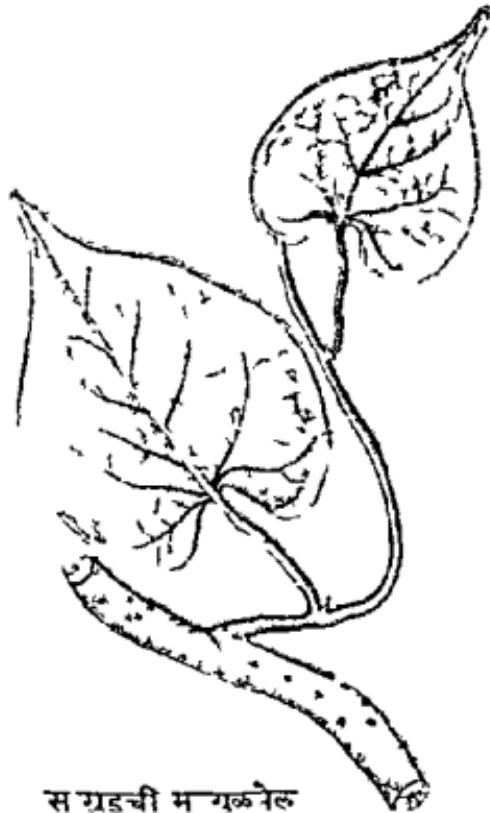
कालेदानेका मुख्य गुण रेचक है. इसमें विशेषता यह है कि इससे बहुत शीघ्र दस्त होते हैं और तिसपर भी किसी प्रकारका अपाय होनेकी भीति नहीं रहती. जमालगोटा या अंग्रेजी जालप नामकी जो बडी तीव्र रेचक दवाएं हैं उनसे रेचक गुणोंमें यह किसी अंशमें कम नहीं है. किंतु इसमें यह विशेष लाभ है कि जमालगोटा या जालपमें जो कितने ही दोष हैं वे इसमें बिलकुल नहीं. यह उमदह रेचक होनेसे सरकारी अस्पतालोंमें इसका व्यवहार इन दिनों बहुत किया जाता है. कालादाना घीमें भूंजकर उसका चूर्ण करके, ३ से ६ माशे तक चूर्ण गरम जलके साथ लेनेसे दो दस्त खुलकर होते हैं. ३० से ६० रत्तीतक की साधारण मात्रा है. तीव्र रेचक देना हो तो कालेदानेका ६० से ७० रत्तीतक चूर्ण उसमें ५-६ रत्ती सोंठ मिलाकर गरम जलके साथ खिलाना. यह प्रयोग जालपका काम करता है.

गिलोय, गुर्च.

संस्कृत—गुडूची, अमृतवल्ली, ज्वरारि, अमृता, श्यामाम्बरा, सुरकृता, मधुपर्णिका, छिन्नोद्भवा, अमृतलता, छिन्ना, रसायनी, सोमलतिका, वरानिर्जरा, छन्निका, अमृतसम्भवा, वत्सादनी, छिन्नरुहा, विशल्या, भिषक्प्रिया, कुंडलिनी, वयस्था, जीवंतिका, चन्द्रहासा, छन्निका, नागकुमारिका, नागकन्यका, धारा, कुंडली, छिन्नागा, चक्रलक्षणिका, तन्त्रिका, ज्वरनाशी, मंडली, देव निर्मिता, सौम्या, सोमा, बहुछिन्ना, तिक्ता, चक्रिका. म. गुळवेल. कोंकणी—गरुडवेल, गरोल. गु. गळो. कान्यकुब्ज—गुरुची. बं. गुलच. क. अमरदवल्ली. ते. तिप्पतिगा. ता. शिन्दी, करोदी. फा. गिलई. अ. गिलोई. द्रु. अमृत बेरु. मला. चिनामृतम्. इ. Heart leaved Moonseed हार्टलीव्हड् मूनसीड. ला. Tinospora Cordifolia टिनोस्पोरा कॉर्डिफोलिया.

वर्णन. गिलोय एक ऐसी वनस्पति है जो प्राय सब रोगोंमें उपयोगी है

और हिंदुस्थानमें प्रायः सर्वत्र पैदा होती है. गिलोय दूसरे वृक्षके सहारेसे ऊपर चढनेवाली वेल है. कहीं कहीं पहाडोंमें पथ्थरोंके आश्रयसे चढी हुई भी देखनेमें आती है. उसे पहाडीगिलोय, कहते हैं. महाराष्ट्रमें उसे 'खडकी' गिलोय कहते हैं. गिलोयकी वेल बहुत ऊंची चढती है और मोटीभी बहुत होती है. पुरानी गिलोय कहीं कहीं ८-१० उंगल तकके घेरकी देखी जाती है. नीम परकी गिलोय सबसे उमदह गुणदायक मानी जाती है. नये कोमल वेलकी छाल मुलायम होती है. और यह ३। ४ वर्षकी पुरानी होनेपर उसकी छाल खरदरी होती है. कोमल वेलकी छाल हरे रंगकी होती है. और पुरानी की मैले-सफेद रंगकी होती है. किन्तु वाहरी छाल छील डालनेपर अंदर कोमल वेलकासा हरा रंग दिखाई पडता है. गिलोयकी वेलके एक और बडी गांठ होती है और छालके ऊपर बहुतसी खरदरी छोटी छोटी बुंदकियां होती हैं. गिलोयके पत्ते वेलके दोनों और ऊपर-नीचे लगते हैं. अर्थात् वे एकदूसरके सामने जुडे हुए नहीं लगते. पत्ते देखनेमें पीपलके पत्तोंके सदृश दीर्घ-वर्तुल होते हैं किन्तु आकारमें पीपलके पत्तोंसे बडे होते हैं. इसके सिवाय गिलोय के पत्तोंकी पीपलके पत्तोंकीसी लंबी नोक नहीं होती. गिलोयके पत्तोंकी आकारके विषयमें हृदयसे समता कर सकते हैं और इसीके ऊपरसे गिलोयका अंग्रेजी नाम बना है ऐसा हमारा अनुमान है. पीपलके पत्तोंसे गिलोयके पत्ते अधिक मृदु और चिकने होते हैं. उनपर रोवें वगैरह खरस्पर्शी पदार्थ नहीं रहता. पत्ते ४ से १२ इंच लंबे और ३ से ८ इंच चोडे होते हैं. पत्तोंके डंठल लंबे रहते हैं. गिलोयपर आमके मोरके भांति कुछ सफेदकेसरी रंगके फूल पत्तोंके बगलमेंसे निकलते हैं. फूलछोटे होकर उनमें नर-मादी दो जाति हैं. नर पुष्पोंके गुच्छ लगते हैं, और मादीफूल एक एक अलग अलग लगते हैं. गिलोयपर चिरोंजीके बराबर बडे फलोंके गुच्छे लगते हैं. पकनेपर वे लाल होते हैं. जिस प्रकार चिरोंजिके ऊपरकी त्वचा निकालनेपर अंदर से बीज निकलता है उसी प्रकारसे बीज गिलोयके फलमें होता

है. परंतु गिलोयफलकी त्वचा चिरौंजीकीसी कठिन नहीं होती. इसके अंदरका बीज द्विदल और अर्धचन्द्राकार होता है. सबही बेलोंपर फल नहीं लगते. गिलोयकी जड मोटी-कंदके सदृश होती है. जडकी छाल सूखनेपर उसकी झुररियां पडती हैं और वह अंदरके काष्ठमय भागसे अलग होती है. गिलोयका स्वाद कडवा है. परंतु उसके अनेक उत्कृष्ट गुणोंके कारण उसको संस्कृतमें अमृता और प्राकृत भाषामें 'गुडवेल' इत्यादि नाम दिये गये हैं. गिलोयके उत्पत्तिके विषयमें एक पौराणिक कथा इस प्रकार प्रचलित है, कि राम-रावण युद्धमें रावणका वध होनेपर असुरोंके हाथसे रामचंद्रकी जो वानरसेना मारी गई थी वह इंद्रनें अमृतवर्षा करके पुनः जीवित की — उस समय जिस जिस जगह अमृतके बिन्दु गिरेथे उस २ जगह गिलोयकी वेलें उत्पन्न हुई. इससे इसका अमृता नाम हुआ. दवाइयोंमें गिलोयकी वेलका ही उपयोगी करते हैं परंतु पत्तोंकाभी उपयोग कई प्रकारसे हो सकता है. जहरी वृक्षोंपरकी गिलोय दवाइके काममें नहीं बरतन चाहिये. दवामें बरतने पूर्व गिलोयके ऊपर की सफेद और हरी छाल छोला डालना चाहिये परंतु फांट और हिम बनानेमें हरी छाल रखनेसे अधिक गुण होता है ऐसा देखा गया है.

डाक्टरोंनेंभी गिलोयका बहुत अनुभव करके सिद्धान्त किया है कि, जाडा बुखारकी कंपकंपी और ज्वर दूर करनेमें यह बहुत उपयोगी है. अंतरित अथवा और किसी प्रकारका ज्वर छूटनेके बाद शरीरमें जो कमजोरी रहती है उसको हटाने के लिये भी गिलोय बडे कामकी औषधि है. गिलोयके छोटे छोटे टुकडे २॥ तोले २९ तोले गरम पानीमें २ घंटेतक ढके हुए बरतनमें भिगो रखकर फिर छानले और हरबार २-४ तोलेके हिसाबसे दिनमें तीन चार पिलानेसे ज्वर, कमजोरी वगैरह विकार दूर होते हैं. वेरिंग प्रभृति डाक्टरोंनें इस प्रयोगको आजमाकर इसके गुणोंकी प्रशंसा की है. कलकत्तेके बडे अस्पतालके डॉ. ओशानसीनें गिलोयका

अर्क निकालकर वर्षोंतक उसका खूब अनुभव लिया था उससे उसको पूरा विश्वास हो गया कि ज्वर, तज्जनित कमजोरी आदि विकारोंके अतिरिक्त पुरानी गठियाकी बीमारी तथा उपदंश (आतिशक) से होनेवाले अनेक रोगोंमे गिलोय एक अपूर्व दवा है. मद्यके मन्दार्कमें सात दिनतक गिलोयके टुकडे भिगो रखकर अर्क निकालनेकी विधि और उपर्युक्त अनुभव डॉ. ओशानसीनें 'फॉर्माकोपिया इंडिका' नामक ग्रंथमें लिखा है. गिलोय, उत्कृष्ट बलवर्धक और मूत्रल होनेका अनुभव हमारे अनेक डॉक्टर मित्रोंने हमसे कहा है.

गिलोयका सत्त निकाल रखते हैं, वह अनेक रोगोंमें गुणदायक और शक्तिवर्धक है. इस सत्तकी परीक्षा फ्लुकिगर नामके जर्मन रसायन शास्त्रवेत्ताने १८९४ ईसवीमें की थी जिसमें, गिलोयके सत्तमें एक रालसदृश कडुआ द्रव्य और दूसरा बहुत थोडासा, स्फटिकरूपी द्रव्य उसको मिला था उक्त रालसदृश द्रव्य बर्बेरीन (जो दारुहल्दीमें मिलता है वही) है. ऐसा उसके रासायनिक गुणोंसे डॉ. फ्लुकिगरने अनुमान निकाला है.

गुणदोष —गिलोय कसैली, कडुवाई, उष्णवीर्य, चरपरी, ग्राहक, रसायन, बलकर, मधुर, अग्निदीपक, लघु, हृद्य, आयु बढानेवाली, और ज्वर, दाह, तृषा, रक्तदोष, वमन, वायु, भ्रम, पाडुरोग, प्रमेह, त्रिदोष कमला, आम, खासी, कुष्ठ कृमि, खूनी, बवासीर, वातरक्त, खुजली, मेद, विसर्प, पित्त और कफका नाश करनेवाली है गिलोय घीके साथ सेवन करनेमे वादीका, गुडके साथ मलबंधका, बूरेकेसाथ पित्तका, शहदके साथ कफका, रेंडीके तेलके साथ वायुका और सोंठके साथ आमवायुका नाश करती है गिलोयके पत्तोंकी शाक-कसैली, गरम, हलकी, चरपरी, कडवी, पाककालमें मधुर, रसायन, अग्निदीपक, बलकर, ग्राहक, और त्रिदोष, वातरक्त, तृषा, दाह, प्रमेह, कोढ, कमला, और

पीलिया इनका नाश करती है. कंद गिलोय गरम, चरपरी, और ज्वर सन्निपात, विप, वलीपलित, और पिशाचबाधा इनका नाश करती है. **गिलोयका सत्त.** स्वादु, पथ्य, लघु, दीपन, नेत्रोंको हितकर, धातुवृद्धिकर, बुद्धिवर्धक, वय स्थापक, और वातरक्त, त्रिदोप, पीलिया, तीव्रज्वर, उलटी, जीर्णज्वर, पित्त, कमला, प्रमेह, अरुचि, दमा, खासी, हिचकी, बवासीर, क्षय, दाह, मूत्रकृच्छ्र, प्रदर, और सोमरोग इनका नाश करता है (१) विषमज्वर प्रभृति अनेक रोगोंपर–गिलोयका कपड छन किया हुआ चूर्ण १०० भाग, गुड और शहत १६–१६ भाग और घी वीस भाग तीनोचीजें मिलाकर अग्निबलके अनुसार सेवन करके पथ्य और परिमित भोजन करनसे कोई रोग नहीं हो सकता. बालोका सफेद होना, बुढापा, ज्वर, प्रमेह, वातरक्त, नेत्ररोग, ये सबदूर भग जाते हैं. यह उत्कृष्ट रसायन, बुद्धिवर्धक और त्रिदोषनाशक है. इसके सेवनसे, मनुष्य दैत्यके सदृश बलिष्ठ और शतायु हो सकता है. इस प्रयोगको अमृतरस कहते हैं. और यह वास्तवमें वैसाही है. (२) सर्पदंशपर–पहाडी गिलोयका कद लाकर दूधमें पकाकर रख छोडना और पानीमे यह कद तथा रीठा घिसकर सपकटे आदमीको पिलाना. (३) सब प्रकारके प्रमेहपर–गिलोयको कूटकर उसका स्वरस निकालना और उसमें पाखानभेदका चूर्ण और शहत अथवा केवल शहत डालकर पीना. (४) कमलरोगपर–गिलोयके रस अथवा क्वाथमें शहत डालकर पिलाना, अथवा पत्रोंका कल्क छाछमे घोलकर पीना. (५) तिमिरादि नेत्ररोगोपर–गिलोयका स्वरस १०माशे और शहत तथा सेंधा नमक एक एक माशा तीनों चीजे एकत्र करके खरलमे खूब घोटकर अजनके तौरपर थोडा थोडा आखोमे डालना. इससे तिमिर काचबिंदु, खुजली, लिंगनाश वगैरह नेत्र विकार आराम होते हैं (६) आमवातपर–गिलोय और सोंठका क्वाथ पिलाना, अथवा गिलोयके क्वाथमें रेंडीका तेल डालकर पीना. (७) पित्तरोगपर–

गिलोयके रसमे मिसरी मिलाकर पीनेसे तत्काल पित्त शमन होता है. (८) कफरोगपर–गिलोयके काथमें शहत डालकर पीना. (९) अमृतादि काथ–गिलोय, एरंडकी जड, अडुसा इनके काथमें रेंडीका तेल डालकर पीनेसे शरीर भरमें संचार करनेवाले वातरक्तकी शांति होती है. पाठ २ रा. गिलोय और त्रिफला दोनोंका काथ, शहत और पीपरका चूर्ण डालकर नित्य सेवन करनेसे सब तरहके नेत्र रोगोंमें लाभ पहुंचाता है पाठ ३ रा गिलोय. सोंठ, आवला, असगंध, और गोखरू इनका काथ पीनेसे शूलयुक्त वातजन्य मूत्र कृच्छ्र नष्ट होता है. पाठ ४ था–गिलोय, अडूसा कडवे परवल, नागरमोथा, सतवनकी छाल, खैरछाल, काला बैन, नीमके पत्ते, हलदी, और दारुहलदी इन चीजोंका काथ पीनेसे अनेक प्रकारके विष, विसर्प, कुष्ठ विस्फोट खंडु, मसुरिका ज्वर शीतपित्त वगैरह रोग दूर होते हैं. पाठ ५ वां गिलोय, सोंठ, नागरमोथा, हलदी जवासा, इनके काथमें पीपरका चूर्ण डालकर वातज्वरमें देना पाठ ६ ठा गिलोय और पूर्वोक्त दश मुलका काथ पीनेसे तेरह प्रकारके सन्निपातका नाश होता है पाठ ७ वां–गिलोय, सोंठ भारगीकी जड और व्याघ्रपर्णी इनके काथमें पीपरका चूर्ण डालकर पीना. इससे खासी-दमा आराम होते हैं. पाठ ८ वां –गिलोय, सोंठ, कटमरैयाकी जड, ऊंटकटीरा, सारिवन, पिठवन, कटेरी बरहटा और गोखरू इन पाच चिजोंकी जड, और नागरमोथा इनका काथ बनाकर वह ठंडा हो जानेपर उसमें शहत डालकर पीना. स्त्रियोंके सूतिका रोगमें यह काथ बहुत लाभदायक है (१०) मूत्रकृच्छ्रपर –गिलोयके रसमें शहत डालकर पीना. (११) मधुज्वरपर– गिलोयका काथ शहत डालकर पीना. (१२) मसूतास्त्रीके स्तनोंमें दूध पैदा होनेके लिये–गिलोयके काथमें दूध मिलाकर,

पिलाना. (१३) बालकोंके पेटमें कृमि पडते हैं उनके लिये–गिलोय और भैंसिया गूगल एरंडके पत्तोंके रसमें घिसकर पेटपर लेप लगाना. (१४) **जीर्णज्वरपर**–गिलोयके काथमें चौथाई शहत, अथवा तीन माशे पीपरका चूर्ण मिलाकर पिलाना. अथवा गिलोय कुचलकर रात्रिको पानीमें भिगो रखना और सवेरे छानकर पीलेना (१५) **वातरक्तपर**–गिलोय, गोखरू, और आंवले के काथमें रेंडीका तेल अथवा शहत १ तोला मिलाकर पीना. अथवा गिलोयके काथमें एरंड मूलका चूर्ण डालकर पीना–अथवा केवल गिलोयका काथही पीना. (१६) **पित्तप्रदरपर**–गिलोयका रस शहतडाल कर पीना. (१७) **सापके जहरपर**–नीम परकी गिलोय पावभर पानीमें पीसकर पिलानेसे उलटी होकर जहर उतरेगा. (१८) **अमृतादि काथ, सब प्रकारके ज्वरों के लिये**–गिलोय, धनियाँ, नीमकी छाल पद्मकाष्ठ और 'रक्तचंदन इनका काथ पीना' इससे जठराग्नि मदीप्त होकर ज्वर दूर होता है और दाह, मुंहमेसे लारका टपकना, तृषा, उलटी, और अरुचि ये विकार भी बंद होते हैं. (१९) **त्रिदोषजनित वमनपर**–गिलोयका काथ शहत डालकर पीना. (२०) **शीतपित्तपर** (जिसमें शरीरपर चकातियांउठती हैं) गिलोयका काथ पीना. (२१) **हृदयशूल और वातशूलपर**–गिलोय और काली मिरचका चूर्ण गरम पानीके साथ खाना. (२२) **अमृतादि काथ, सब वातरोगोंकेलिये**–गिलोय, एरंडकी जड, सोंठ, देवदार, रास्ना और हरड इनका काथ नित्य सबेरे लेना. (२३) **चौथय्या ज्वरपर**–गिलोय, आंवले और नागरमोथा इनका काथ पीना. (२४) जीर्णज्वर, कफ, तिल्लीका फूलना, खासी और अरुचि–इनविकारोंमें–गिलोयके रसमें पीपर और शहत डलकर पीना (२५) **सर्पके काटनेपर**–ज्येष्ठके महीनेमें गिलोयका कंद थोडे परिश्रमसे मिल सकता है. उसे लाकर उसके टुकडे करके उन्हें दूधमें पकाकर रखना और सपकटेआदमीको पानीमें पीसकर पिलाना. रोगी यदि बेहोश हो गया हो तो उसकी तालुकी त्वचा नश्तरसे

कुछ चीलकर उसजगह पर मालिश करना. चौपायोंको सापने काटा होतो उनकी जीभपर मालिश करना इससे विष उतरता है. (२६) वलीप लित (शरीरपर झुररिया पड़ती हैं और बाल सफेद होत हैं) रोगमें-गिलोयका चूर्ण नित्य २ माशे खाना (२७) वीर्यस्तंभनके लिये-गिलोयके पचांगोका चूर्ण शहतमे चाटना गिलोयका सत्त निकालनेकी विधि-आम या नीमके वृक्षपरकी गिलोय पुरानी और मोठी तलाश करके ले आना. उसके चार चार उगल लंबे टुकड़े करके उन्हें पानीमे धो डालना फिर सिलपर पथ्थरमे कुचलकर कलईके बरतनमें चार प्रहरतक पानीमें भिगो रखना. उसके बाद उन्हे हाथसे खूब मल कर अथवा मथनीमे मथ कर निचोडकर निकाल डालना और उस पानीके बरतनको टेढा करके रख देना. कुछ देरकेबाद बरतनके तले सत्त जमा हुआ देखनेमें आवेगा. तब ऊपरका सब जल निकाल डालना फिर उस सत्तमें पाच-सातबार पानी डाल डालकर तुरत ही निकालते जाना इतनी क्रिया करनेसे शुद्ध और सफेद सत्त निकलता है और उसका कडुवा पनभी जाता रहता है इसको फिर फिर छायामें सुखाकर शीशीमें भर रखना. इसकी मात्रा आधे माशेसे दो माशेतककी है यह अलग अलग अनुपानसे अनेक रोगोंमें लाभ पहुंचाता है. (१) प्रमेहमें-गौके पावभर दूधमें २ माशे सत्त लेना अथवा त्रिफला चूर्ण और मिसरीमें लेना. (२) जीर्ण ज्वरमें-घी और मिसरी के साथ, शहत—पीपरके साथ, अथवा गुड और कालेजीरे के चूर्णके साथ (३) पिलिया रोगमें-घी और शहतमें अथवा दूधमे. (४) दाह रोगमें-जीरा और मिसरिके साथ. (५) वायु रोगमें-घीके साथ. (६) पित्तज्वर और पित्तपर बूरेके साथ (७) कफ विकारपर शहतमें (८) कुष्टपर-रेंडीके तेलमें (९) आमवायु और उदररोगमें-सोंठके साथ. (१०) ज्वरमें-शहतके साथ (११) शक्तीकेलिये-गौके धारोष्ण दूधमें मिसरी मिलाकर एक या दो माशे सत्त डालकर पीना (१२) वमनमें चावलकी धोवनके साथ. (१३) अरुचिमें-अनारके रसमें

सं. वाराही- मडुकरकंद.

सं. अग्निपर्णी. म रानभाल

(१४) ववासीरमें—मक्खनमें. (१५) कमलरोगमें—द्राक्षारसमें. (१६) दमा और खांसीकेलिये—सोंठ, काली मिर्च, पीपर और शहतके साथ. (१७) हिचकीपर—शहतमें (१८) क्षयरोगमें—घी, मिसरी, और शहतमें. (१९) मूत्रकृच्छ्रमें—दूधमें (२०) प्रदररोगमें—लोधके चूर्णमें (२१) मर्मस्थानके रोगोंमें—छाछमें (२२) सबरोगोंपर—उंढे पानीमें (२३) कुष्ठमें—वनतुलसीके रसमें (२४) गुल्मपर—सोंठकेसाथ. (२५) सब नेत्ररोगोंपर—भैसके ताजे घीमें (२६) बाल काले होनेकेलिये—भांगरेके रसमें (२७) अग्निमांद्यमें—गोरखमुण्डीके साथ—(२८) वलीपलित (शरीरपर झुर्रियां पडना और बालोंका सफेद होना) पर—गिलोयकाचूर्ण नित्य दो तोले सेवन करना. (२९) वीर्यस्तंभनकेलिये—नित्य गिलोयके पांचों अंगोंका १ तोला चूर्ण शहत मिलाकर चाटना.

वाराहीकंद (भिर्वोलीकंद)

संस्कृत—वा (व) राही, सूकरी, क्रोडकन्या, गृष्टि (का) कन्या, विष्वक्सेनकान्ता, ब्रह्मपुत्रिका, क्रौडी, त्रिनेत्रा, कौमारी, माधवेष्टा, महौषधि, क्रोड, सूकरकन्द, कुष्ठनाशन, वनवासी, महावीर्य, शबरकंद, वीर, ब्राह्मकन्द, सुकन्दक, वृद्धिद, व्याधिहंता, अमृत, वनमालिनी, वक्रालु, श्वासकन्द, किटि, कांक्षी, वदरा, चर्मकारालु. मराठी. डुकरकन्द, भिर्वोलीकन्द. गु. वाराहीकन्द. वं. चामालु, चुवरिआलु. क. हंदिगेड्डे (गड्डे) तै. ब्राह्मदंडिचेट्टु, तेलताडिचेट्टु Latin-Dioscorea Sativa डायोस्कोरिया सेटिवा.

वर्णन—वाराहीकन्दकी वेल होती है. यह जमीनपर फैलती है. प्रायः सभी बडे बडे पहाडोंमें यह खुदबखुद पैदा होती है. जलप्राय देशमें भी ये वेलें बहुत होती है. कंदोंकेलिये ये वेलें लोग बागमें भी लगाया करते हैं. इसके पत्ते पानके आकारके होते है. परंतु डंठल उससे लंबे होते हैं. पत्ते वेलपर आमने-सामने लगते हैं. उनपर जालके सदृश नसें होती है. फूलोंके गुच्छ लगते है. इसका कंद दवाके उपयोगी है. कंद एक हाथ गहरी जमीनमें मिलते हैं. इसका आकार किसीकदर वृषणके सदृश होता हैं. इसके ऊपर सूअरकेसे कडे बाल होते हैं, इसका मुंह और सिर सूकरके आकारसे मिलता है और ये कंद कदा-

चित्र सूकरको भी प्रिय हैं. इन कारणोंसे इसको वाराहीकंद और उसके समानार्थक दूसरे नाम दिये गये है.

वाराहीकंद—चरपरा, कडुआ, बलकर, पित्तकर, रसायन, शुक्रवृद्धिकर, वृष्य, अग्निदीपक, मधुर, गरम, वर्णकर, आवाजकेलिये हितू, आयुर्वर्धक; और कुष्ठ, प्रमेह, त्रिदोष, कफ, वात, कृमि, बवासीर और मूत्रकृच्छ्रनाशक है. वैद्यक ग्रंथोंमें वाराहीकन्दकी बडी भारी प्रशंसा की है. बवासीरमें तो यह अत्यंत लाभदायक है. इसके सिवाय रसादि धातुओंकी वृद्धि करनेमें भी यह प्रशस्त है. लोगोंके अज्ञान और उपेक्षाके कारण यह कंद दुर्लभसा हो गया है. इसको बहुतही कम लोग पहचानते है. हमारे पास कितनेही वैद्योंने वाराहीकंदके नामसे कई वार और और जातके जंगली कंद भेज दिये थे. वाराहीकंदका कुछकुछ सादृश्य रखनेवाले कितनेही प्रकारके कंद हैं. उन्हींमेंसे किसीको वाराहीकंद समझकर लोग दवाओंमें बरतते है. यहांपर हमने जो चित्र दिया है वह ठीक ठीक वाराहीकंदका है. बवासीरपर हमनें इसको अनेक प्रकारसे अजमाया है और उस रोगमें बहुत लाभदायक पाया है.

कांडर जातिके सर्पके जहरपर—२तोले वाराहीकंदको पानीमें घिसकर पिलाना. यह तीव्र दवा है. कांडरके जहरके सिवाय यदि पिलाया जावे तो सहन नहीं हो सकेगा. गलेमें जलन होगी. भूलसे यह दवा दी गई हो तो उसका असर दूर करनेकेलिये घी पिलाना. तिजारी बुखारपर—वाराहीवेलकी टैनी अथवा जड पंचरंगी सूतसे भुजामें या गलेमें बांधना.

पिठवन (पिठौनी, डावडा.)

संस्कृत–पृश्निपर्णी, पृथक्पर्णी, कलशी, महागुहा, शृगालविन्ना, धमनी, मेखला, लांगुली, गुहा, क्रोष्टुपुच्छी, शृगाली, सिंहपुच्छी, (र्णी), दीर्घपर्णी, दीर्घा, क्रोष्टुकमेखला, चित्रपर्णी, उपचित्रा, श्वपुच्छा, अंघ्री, बलपर्णी, क्रोष्टुका, कपित्थका, धावनी, क्षीनगी, शृगालवृक्षा, जटिला, अंघ्रिपर्णी, क्रोष्टुविन्ना, क्रोष्टुपुच्छिका, अहिपर्णी, पूर्णपर्णी, तन्वी, घाटिला, कदला, कङ्कुशत्रु, चक्रकुल्या, शार्णमाला, ब्रह्मपर्णी, विष्णुपर्णी. म. पिठवण, रानभाल, डवला. गु. नानो समेरवो. बं. चाकुले, चाकुलिया. क. नरियलबोत्रे, नारिहोत्रे. तै. कोलाकुमन्ना. ओरिया—पृष्टपर्णी. Latin Uraria Lagopodioides उरेरिया लेगोपोडायाइडिस.

वर्णन—इस वनस्पतिके विषयमें कुछ मतभेद पाया जाता है. बंगालवाले, हमनें जो चित्र यहांपर दिया है उसीको पिठवन कहते हैं. यह एक छोटासा पौधा होता है. इसके पत्ते गोल, बेलदार और बिल्वपत्रकी तरह त्रिदल होते हैं. बीचका पत्ता बगलके पत्तोंसे बडा होता है. इसपर सफेद और कुछ कुछ नीले रंगके फूल लगते हैं, और वे जटिल होते हैं. कोंकणवाले जिसको पिठवन कहते हैं उसका पौधा दो ढाई हाथ ऊंचा होता है और उसके पत्ते दोहरे, बरछीनुमा होवे हैं. वे डंठलके पास सकडे होते हैं और बीचमें थोडा खंड देकर ऊपरकीतरफ चौडे होते जाते हैं. इसके पत्ते खासे ५।६ अंगुल लंबे होते हैं. ऊजड धरतीपर ये पौधे बहुतायतसे होते हैं. इसपर चपटी और कुछ मरोडदार फलियें लगती है. गुजरातवालोंकी पिठवन कुछ औरही प्रकारकी है. एक महाशयनें उसका वर्णन इसप्रकार किया है. यह पौधा नदीकिनारे बडे बडे वृक्षोंकी छायामें उत्पन्न होता है. इसकी उंचाई ३।४ फुट होती है. इसके पत्ते एकांतरित—ऊपर नीचे, दो तीन इंच लंबे और एक—डेढ इंच चौडे होते है. ऊपरकी ओरसे सुंदर चिकने होते है और नीचेकी ओर सूक्ष्म रोवें होते हैं. इसपर वर्षाऋतुके अंतमें छोटे छोटे लाल फूलोंके गुच्छ लगते है. और सफेद रंगकी, गोडवाली सेमें लगती हैं. उनके भीतर पीले रंगका लोबिये जैसा बीज होता है. ऊपर जो तीनप्रकारकी पिठवनका वर्णन किया है इनमेंसे किसी एककाभी मेल दूसरेके साथ सर्वांशमें नहीं मिलता है. तर-तम—भावसें देखनेपर कोंकनकी और गुजरातवालोंकी पिठवनमें अधिकांशमें सादृश्य पाया जाता है और. बंगालवालोंकी पिठवन बिलकुलही भिन्न जातिकी प्रतीत होती है. ऐसी दशामें वास्तविक पिठवन कौनसी है इस बातका निर्णय करना कुछ कठिन है. ऊपर कहागया है कि कोंकनमें पिठवन को 'रानभाल' कहते है. इसका शब्दार्थ 'जंगली बरछी' यह है और उसके पत्तोके बरछीनुमा आकारसे यह नाम उसको दिया गया है. अर्थात उसका आकार और नामार्थ इनका मेल मिलता है. परंतु इस वनस्पतिका पृश्निपर्णी यह संस्कृत नाम रखनेवाली व्यक्तिसे रानभाल यहप्राकृतनाम रखनेवाली व्यक्ति भिन्न थी. कहनेका तात्पर्य यह है कि प्राकृतनाम और आकार इनका मेल, वह यथार्थ पृश्निपर्णी है या नहीं इस बातका निर्णय करनेमें विशेष प्रयोजनीय नहीं है. अब संस्कृतमें पृश्निपर्णीके जो अनेक पर्यायनाम हैं उनके यौगिक अर्थके विचारसे इस विषयमें यदि कोई सिद्धान्त किया जा सकता हो तो देखें. यद्यपि वनस्पतियोंके नाम प्राय:योगरूढ होते

हैं, तथापि जब यौगिक अर्थ ठीक होगा तबही वह रूढ होसकता है. उदाहरण-केलिये–पिठवनका दीर्घपर्णी भी एक नाम है. अब दीर्घपत्तोंकी वनस्पतियें कई हैं. परंतु उनमेंसे वह पृश्निपर्णीनामक विशेष वनस्पतिके लिये ही नियत किया गया है. कोंकनी और गुजराती पिठवनके पत्ते लंबे होते हैं और उत्तरीय प्रदेशोंकी पिठवनके पत्ते गुलाई लिये होते हैं. तब दीर्घपर्णी नामका व्यवहार कोंकन–गुजरातकी पिठवनहीकेलिये किया जा सकता है. इसका मुख्य प्रसिद्ध नाम पृश्निपर्णी है, जिसका शब्दार्थ पतले पत्तोंकी, मृदु पत्तोंकी, अथवा किरण सदृशाकार पत्तोंकी, यह हो सकता है. पहले दो लक्षण दोनों प्रकारकी पिठवनोंमें घट सकते हैं- अब रहा किरणाकार. इसका अर्थ इसप्रकार लगाया जा सकता है कि सूर्यकिरण जिस प्रकार जडमें सूक्ष्म होकर आगे फैलता है उसी प्रकार डंठलके पास बारीक होकर आगे फैलनेवाले पत्ते इसके होते हैं. पृथक् पर्णीनाम औत्तरीय पिठवन की ओर झुकता है. क्योंकि उसके तीन पृथक् पत्ते होते हैं. जटिल नाम कोंकनी रानभालके लिये उचित है. परंतु बंगाली पृश्निपर्णीके फूल एक प्रकार जटिल होते हैं. अब उसकेलिये भी इस नामका उपयोग हम कर सकते हैं. त्रिपर्णी शब्दसे सरिवन और पिठवन इन दोनोंका बोध होता है. त्रिपर्णी कहनेमे केवल सरिवनही समझी जाती है. यहांतक जो अर्थविवेचन किया इससे भी यह यथार्थ पिठवन है और यह अयथार्थ इस तरह कहना नहीं बन पडता. एतावता वास्तविक सिद्धान्त यही निकलता है कि पृश्निपर्णी या पिठवनकी अनेक जातिएं हैं और उन्हींमेंसे एक जातिविशेषका चित्र हमने यहांपर दिया है. जिन बंगाली ग्रंथकारोंने इसीको पिठवन बतलाया है वे लिखते हैं कि बंगाल और पश्चिमप्रांतमें यह बहुतायतसे होती है दक्षिणमें नहीं होती. इससे भी हमारे उक्त सिद्धांतकी पुष्टि होती है. हमारे मित्र स्व. डॉ. भंडीको वनौषधियोंके विषयमें खोज करनेका बहुत शौक था. उनका भी मत पिठवनके विषयमें हमारे जैसाही था. दोनों तरहकी पिठवनके गुण भी एकहीसे हैं. दूसरी तरहकी पिठवनका चित्र आगे दिया जायगा. गुणदोष–पिठवन- चरपरी, कडवी, खट्टी, गरम, मधुर, हलकी, वृष्य और खांसी, अतिसार, रक्तातिसार, वातरोग, प्यास, दाह, त्रिदोष, वमन, उन्माद, ज्वर दमा और व्रण इन रोगोंको मिटानेवाली है. औषधि प्रयोग—औषधिमें इसकी जड का विशेष उपयोग होता है और दशमूल और लघुपंचमूलमें इसकी जडकी गणना

होता है. तथापि इसके पत्तेभी उपयोगी है. (१) गर्भिणीके रक्तपित्त, कमला सूजन, खांसी, दमा और ज्वर इन विकारोंपर— पिठवन, खिरेटी और अडूसा इनका रस पिलावे. (२) वचनागका जहर उतारनेकेलिये— पिठवनका ४ तोले रस मिसरी डालकर पिलाना. (३) तिल्ली फूलनेपर पिठवनकी जडका अथवा पत्तोंका रस पिलाना. (४) सर्पका जहर उतारनेके–लिये पिठवनके पत्तोंका रस पिलाना.

खुरसानी अजवायन

संस्कृत—यवानी, पारसीक यवानी, यावनी, खुरसानी, खोरासानी, यावनी, तीव्रा, तुरुष्का, मदकारिणी, दीप्या, श्याम, कुबेराख्य, मादक, मदकारक, अजगंधा, अजगंधिका, जंतुविनाशक, करभ, कृमिघ्ना, खरपुष्पा, गन्धा, सुगन्धा, बर्हि, बर्हिण. म. खुरासानी ओंवा. गु. खुरासानी अजमा. बं. खुराशानी योयान्. तै. खुरसाणवासु. ता. खोरसनी ओनाम, शिट्टामुट्टि. फा. बंग अ. बज्रुल्बंज, अबीद् शीकरान्. इं. Henbane हेन्बेन. ला० Hyoscyamus niger and H. Albus हायोसायमस नायगर.

वर्णन— यूरप और मध्य एशियाखंडमें खुरासानी अजवायनके छोटे छोटे पौधे जंगलोंमें तथा कूडोंके ढेरोंपर खुदबखुद उगे हुए देखनेमें आते है. ये प्रायः द्विवार्षिक होते है. इनदिनों सहारनपुरके पास, और पूनेके पास हिवरा ग्राममें जो सरकारी बाग हैं उनमें तथा आग्रा और अजमेरके आसपासके कितनेही स्थानोंमें इसकी खती की जाती है. खुरासानी अजवायनके पौधेकी जडें तंतुमय होती हैं. इसका दंड गोल काष्ठमय और शाखायुक्त होता है. पत्ते बडे लंबे, चौडे होते है और उनकी किनार धतूरके पत्तोंकी तरह झालरकीसी कटी हुई रहती है. पत्रदंड लकडीकी तरह कठिन होता है. पत्तोंको डंठल नहीं होते और उनकी जड वृक्षदंडसे सटी हुई रहती है. वृक्षके सिरेमेंफूलोंके गुच्छ लगते है. फूल पीले रंगके और पाच पाखडियोंवाले होते है.उनका आकार तमाखूके फूलोंकासा होता है. उनपर जामनी रंगकी रेषाएं होती है. उसमें दो खाने रहते हैं. फल अंडाकार डोडे जैसा होता है. उसमें दो खाने रहते हैं और उनमें मटमैले-पीलापन और ललाईके मिले–रंगके छोटे छोटे बीज होते हैं. यही खुरासानी अजवायन है.

खु० अजयवानके वृक्ष पुर्तगाल, यूनान, मध्य नॉर्वे, फिनलंड टापू, कॉकेस पहाड, और ब्राझिल इन देशोंमें पाये जाते है. इसकी तीन जातिये बलूचिस्तानमेंभी पायी जाती है. उनमेंसे दो तो द्विवर्षायु है और एक एकवर्षायु है. एकवर्षायु जातिके पौधे जहां तहां खुद्रबखुद उगे हुए मिलते है. परंतु उसमें तीव्र रस न उत्पन्न होनेके कारण वह औषधिके लिये द्विवर्षायु जैसी उपयोगी नहीं है.

पारसीक, खुरासानी, तुरुष्क, यावनी इन नामोंसे ऐसा प्रतीत होता है कि ये वृक्ष ईरान, खुरासान आदि प्रदेशोंमें बहुतायतसे होते है. और इसीपरसे कितनेही लोग ऐसी अटकल लगाते है कि असल में यह वृक्ष भारतवर्षका नहीं किन्तु देशान्तरसे लाया हुआ है. वे कहते हैं कि प्राचीन कालके आर्यवैद्य इस वनस्पतिको नहीं जानते थे और इधर एक दो सदियोंमें वैद्योंनें उसका उपयोग अरबी हकीमोंसे जान लिया. परंतु हमारी समझमें यह अनुमान ठीक नहीं है. क्योंकि, जिस प्रकार इसके पारसीक, यवानी, इत्यादि देशांतरबोधक नाम है उसी प्रकार उसके तीव्रा, मदकारिणी, कृमिघ्नी इत्यादि गुणद्योतक नाम प्राचीन ग्रंथोंमें हैं. 'कोहिबंग' यह जो इसका फारसी नाम है उसका अर्थ 'पहाडी भंग' होता है. और इस अर्थानुसार वह अभीतक हिमालयपर और बलुचिस्तानके पहाडोंपर मिलती है. इसके सिवाय, खुरासानी अजवायन आखिर अजवायनकी अनेक जातियोंमेंसेही एक जाति है. और, और सब जातियें जब हिंदुस्थानमें उत्पन्न होती है और उनका उल्लेख चरकादि प्राचीन ग्रंथोंमें पाया जाता है तब इसी एक विशेष जातिका हिंदुस्थानके किसी प्रदेशमें न होना आश्चर्यजनक और असंभव प्रतीत होता है. भारतवर्षकी धरतीमें यह लोकोत्तर चमत्कार है कि, जिन वृक्षोंको कुछ लोग द्वीपान्तराय समझकर यहां लगाते हैं वे प्राय: उनके असली वतनोंसेभी अधिक पुष्ट और प्रचंड होते हैं. यह प्रभाव इस धरामंडलपर किसी देशकी भूमिमें नहीं है. इसीलिये इस देशको पुण्यभूमि कहा गया है. तात्पर्य, किसी वनस्पतिके देशान्तरीय नामसे अथवा किसी वैद्यकग्रंथमें उसका स्पष्ट उल्लेख न पाया जानेसे वह देशान्तरीय वनस्पति है इसप्रकारका अनुमान निकालना युक्तिसङ्गत नहीं है. पर्वतराज हिमालय जिन असंख्य दिव्य वनस्पतियोंसे भरा हुआ है, उन सबकी खोज किसनें की है? अस्तु. खुरासानी अजवयनके विषयमें इतनी बात हम मान सकते है कि ईरान, खुरासान

वगैरह देशोंमें इस चीजकी उत्पत्ति, व्यापार, या उपयोग अधिकतासे होता होगा. इससे अथवा अन्य किसी कारणसे इसके बारेमें उन देशोंका नाम विशेष प्रसिद्ध हुआ.

खुरासानी अजवायनका वृक्ष धतूरा, तमाखू वगैरह वृक्षोंकी समानजातिका और तीव्र विषैला है. डाक्टरोंने इसके पत्तों और बीजोंके विषयमें अनेक प्रकारसे खोज और परीक्षा की है और वे इससे भांतभांतकी दवाएं बनाते हैं. इससे निष्कर्ष और पद्यार्क (टिंक्चर) निकालते हैं. निष्कर्ष निकालनेकेलिये पत्तों और फूलोंका उपयोग किया जाता है. एक वर्षायु पौधोंकी अपेक्षा द्विवर्षायु पौधोंसे 'हायोसायमिन' सत्त अधिक निकलता है. यह स्फटिकाकार होता है. इसीका पृथक्करण (analysis) करनेपर उसमेंसे 'हायोसीन' नामक एक हवासे जल्द ही जानेवाला या उडजानेवाला तेल और एक अम्लधर्मी सत्त निकलते है.' हायोसिन' तेल 'हायोसायमिन' सत्तसे पांच गुना अधिक तीव्र और पीडाशामक है. इस-कारण बडी सावधानीके साथ इसका व्यवहार करना चाहिये. इसके पत्तोंकी अपेक्षा बीजोंमें अधिकातीव्रता है. बीज नशेला, व्यवायी (शरीरभर फैलनेवाला) और पीडाशामक है. ये गुण इसके सत्तमें बीजोंसेभी बढकर रहते है. वातोन्माद, खंजवायु, कंपवायु, अपस्मार, इन रोगोंपर 'हायोसायमिन' सत्त बहुत उपयोगी है. पीडा दूर करनेकेलिये 'ग्लिसरीन' बाष्पोदकमें मिलाकर उसीमें किंचित कार्बोलिक ऍसिड (इसलिये कि वह बिगडने न पावे)और 'हायोसायमिन' सत्त मिलाकर इसकी चार बूंदें सुइवाली पिचकारीमें भरके डॉक्टर लोग त्वचाके भीतर प्रविष्ट कर देते हैं. सत्तकी मात्रा बहुत ही थोडी देना चाहिये. एक ग्रेन के शतांशसे पचासवें हिस्सेतक इसका प्रमाण है. यह सत्त क्षारधर्मी (alaloid) है. उसके स्फटिक बनते है. यह सत्त पहले खुरासानी अजवायनमेंसेही निकाला जाता था. परंतु कुछ कालसे जर्मन रसायनवेत्ता Scopolia 'स्कोपोलिया' नामक वनस्पतिसे भी इसे निकालने लगे हैं. वे कहते है कि धतूरेंमेंसे भी यह निकल सकता है.

खुरासानी अजवायन—चरपरा, रूक्ष, पाचक, ग्राहक, उष्ण, नशैला, गुरु, वातल और कफनाशक है. इसके सिवाय अजवायनके सब गुण इसमें हैं.

खुरासानी अजवायन १ ड्राम और अफीमके डोड ! ड्राम, शहत और नल्के साथ लेनेसे सर्दी, खांसी वगैरह रोग नष्ट होते है. बीज पीसकर खा लेनेमें नशा चढता है. खुरासानी अजवायनका असर, अफीम और बेलाडोना इन दोनोंके दग्म्यानी है. इसके पत्तोंसे निकाले हुए मद्यार्कसे (टिंक्चर) पेशाबकी जलन । टती है. मानसिकभ्रम दूर करनेकेलिये और निद्रानाशनेंभी पत्तोंका अर्क ब लाभ पहुंचाता है. इसकी मात्रा ३० से ६० बूंद तककी है. पागल आदमी ' हायोसायमिन ' सत्त पानीमें घोलकर उसकी पिचकारी रात्रिमें देनेसे लाभ हो है. दांतोंमें दर्द होता हो तो यूनानी लोग खु० अजवायन का बीज पीसकर पन कुल्यारमें मिलाकर उसमें रुईका फोहा भिगोकर उसे दांतोंको लगाते है. या खु अजवायनको सिरोंमेके तेलके साथ मिलाकर उसमें रुई भिगोकर दांतोंके नी दबा रखते हैं. इससे दर्द मिटता है. इसके अर्कका एक बूंद आंखोंके चार ओर लगानेसे आंखोंका दर्द आराम होता है. आंखकी पुतली फैल गयी है (dilated pupils) तो उसपर भी यह अर्क फायदा पहुंचाता है. इसके पत्तोंक रस अथवा अर्क जौंके आटेमें मिलाकर उसका पुल्टीस बांध देनेसे दर्द और जल बंद होती है. इसका बीज घोडीके दूधमें पीसकर भैंसके चमडेपर पोतकर उसे यदि गर्भवती स्त्री अपने पेटपर बांध दे तो गर्भ नष्ट होता है यह ख्याति अफगानिस्तानमें अभीतक प्रचलित है. निदान इससे खु० अजवायनकी तीक्ष्णता की अटकल लग सकती हैं. पारीके ज्वरपर-तीन माशे खुरासानी अजवायन और ९ माशे मुलहटी का कषाय पारी आनेसे पहले पिलाना. खु० अजवायनका सत्त वगैरह निकालनेकीतरफ हिंदुस्यानी लोगोंके ध्यान न देनेसे ये चीजें यूरपसे बनकर यहा बहुतायतसे आती है.

सतावर.

संस्कृत-शतावरी, शतपदी, पीवरी, इंदीवरी, वरा, वृष्या, दिव्या, द्वीपशत्रु, द्वीपिका, अधरकण्टिका, सूक्ष्मपत्रा, सुपुत्रा, बहुमूला, शताह्वया, नारायणी, स्वादुरसा, शताह्वा, लघुपर्णिका, आत्मशक्ति, जयमूला, शतवीर्या, महोदनी, मधुरा, शतमूला, केशिका, शतपत्रिका, विश्वाख्या, वैष्णवी, कार्ष्णि, वासुदेवी, वरीयसी, दुर्भरा, तेज (ल) वल्ली, बहुपत्री, भीरु, बहुसुता, अहेरु, अभीरु, अभीरुपत्री, महापुरुषदन्ता, रङ्गिणी, काचनकारिणी, मदर्भजनी शतपदी, आत्मगुप्ता, जटा, मूला, दुर्मना, वासुदेवप्रियकरी, विश्वस्था. महाशतावरी-वीरा, तुङ्गिनी, बहुस-

सं खुरासानी यवानीः म॰ खुरासानी
सं॰ म॰ शतावरीः

त्रिका, सहस्रवीर्या, सुरसा, महापुरुषदन्तिका, ऊर्ध्वकन्दा, महावीर्या, फणीजिह्वा, महाशना, उर्ध्वकण्टी, हेतु, महोदरी, अहिजिह्वकसंज्ञा, ऋष्यप्रोक्ता. म. गु. शतावरी. बं. शतमूली. क. किरिय आसडी. ते. चह्ल, चह्लगड्डलू. फा. गुर्नदस्ति अ. शकाकुल मिसरी. ला. Asparagus racemosus एस्पेरेगस रेसिमोसस.

वर्णन—शतावरीके पौधे वेल जैसे होते हैं. वे सामान्यतः २।३ फूटतक ऊंचे चढते है. हिंदुस्थानमें प्रायः सर्वत्र होते है. इसकी पत्तियां सरलवृक्षकी अथवा सोयेकी पत्तियोंकी तरह अथवा सूत जैसी बारीक होती है और टैनीकी जडसे सिरेतक दोनों ओर बराबर निकलती हैं. इन पत्तोंमें एक प्रकारकी खारी गंध रहती है. शतावरीके पौधेपर सुगंधी, सफेद रंगके फूलोंके गुच्छ, और बेर जैसे छोटे छोटे फल लगते है. वे पकनेपर लाल होते हैं. औषधमें इसकी जडका व्यवहार किया जाता है. एक एक पौधेको सौतक जडें होती है और इसी कारणसे इसको शतमूली, शतपदी, इत्यादि नाम दिये गये हैं. इसके पत्ते केशोंके जैसे बहुतही बारीक और बहुसंख्य होनेसे इसे केशिका, सूक्ष्मपत्रा, बहुपत्रा ये नाम दिये गये है. केवल पत्ते देखनेमे साधारणतः सोयेका भास होता है और इसपरसे कदाचित् शताव्हा यह नाम उसको दिया गया होगा. कोंकनवाले इसको "सीताचंवरी" कहते हैं. इस नामकरणका यह कारण जान पडता है कि जिस तरह चंवरमें मूठकी तरफ बहुतसी बालोंकी लटाएं एकत्र बंधी रहती है और आगेकी तरफ फैलती हैं उसीतरह ऊपरकी ओर सतावरकी जडें एकत्र जुडी रहती है और नीचे बहुतसी फैल जाती हैं. सूतकी कुकरियें (spindles) एक जगह बांध रखनेसे वे जैसी दीखती है ठीक वैसा ही सतावरकी जडोंका गुच्छ दीखता है. इसको महाराष्ट्रके कितनेही प्रदेशोंमें 'अस्वली' और कहीं कहीं 'दिवसमावली' कहते है. जडोंपर फीके लाल-पीले रंगका पतला छिलका रहता हैं उसको छीलनेपर अंदरसे सफेद रंगका गाभा दृगोचर होता है. उसके बीचोबीच एक कडा तन्तु रहता है. जडके भीतरका गाभा या मगज मीठा होता है.

गुणदोष—सतावर—मधुर, शीत, वृष्य, स्निग्ध, कडवी, रसायन, भारी, दुग्धप्रद अग्निदीपक, बलकर, मेधाजनक, वीर्यवर्द्धक, नेत्रोंको हितू, पुष्टिकर, और पित्त, कफ, वायु, क्षय, रक्तदोष, गुल्म, सूजन, और अतिसार इन विकारोंको मिटानेवाली है.

महाशतावरी—हृदयको प्रिय और हितू, मेधाजनक, अग्निदीपक, वीर्यवर्धक, बहुत शीत, तेजोवर्धक, बलकर, कामोत्तेजक, रसादि धातुवर्धक और बवासीर, संग्रहणी तथा नेत्ररोग इनको मिटानेवाली है. शेष सब गुण सतावर जैसेहैं हैं. सतावरके अंकुर—कडवे, कामोत्तेजक, हलके, हृदयको लाभदायक और त्रिदोष, पित्त, वातरक्त, बवासीर, क्षय और संग्रहणी इन रोगोंको मिटानेवाले हैं.

औषधिप्रयोग—प्रसूत स्त्रीके स्तनोंमें दूध उत्पन्न होनेकेलिये—सतावरकी जडें इस प्रकारसे उखाड ले कि वे टूटने न पावें. फिर दूधके साथ पीसकर पिलाना. ये जडें गौ या भैंसको खिला देनेसे वे भी अधिक दूध देता है. (२) दाह, पित्त, और शूलपर—सतावरकी जडके क्वाथमें दूध और ३ माशे शहत मिलाकर पीना. (३) जाडाबुखारपर—सतावर और जीरा इनका १ तोला चूर्ण छटांक पानीमें घोलकर पीना. (४) कूख, हृदय, बस्ति इनका शूल अथवा पित्तशूल अथवा सब तरहके शूलपर—सतावरके रसमें शहत डालकर पीना. (५) पागल कुत्तेके काटेपर—सतावरकी जडका रस और गौका दूध मिलाकर पिलाना. (६) ज्वरमें—सतावरकी जडका रस, गौका दूध मिलाकर और उसमें थोडा जीरेका चूर्ण डालकर पिलाना (७) पित्तमदरपर सतावरका रस शहत डालकर देना. (८) पुष्टि और वीर्यवृद्धिकेलिये—हर रोज शामको औटाये हुए गरम दूधमें मिसरी और १ तोला सतावरकी जडका चूर्ण मिलाकार पीना. (९) अपस्मार (मिरगी) पर—सतावरकी जड दूधमें घिसकर पिलाना. (१०) वातज्वरपर—सतावर और गिलोयका रस गुड डालकर पीना. (११) पथरीपर—सतावरकी जडका रस, उसमें उतनाही गौका दूध मिलाकर पिलाना. (१२) रक्तशुद्धिकेलिये—सतावरकी हरी जडें लाकर उनके अंदरकी कठिन रेषाएं निकालकर, फिर उनको कुचलकर ८ सेर पानीमें पकाना. औटते औटते जब एक सेर पानी रह जाय तब उसमें एक सेर मिसरी डालकर उसका शरबत बनाना. फिर उसमें केसर, जायफल, जावित्री, छोटी इलायची वगैरहका चूर्ण डालकर शीशीमें भर रखना. और उसमेंसे १ या दो तोले शरबत नित्य गौके ठंडे दूधमें डालकर पीना. इसको ४२ दिनतक सेवन करना चाहिये. दूसरा प्रयोग—सतावरकी जड, चकलडकी जड और खिरैटीकी जड तीनों समांश लेकर अच्छी तरह

कुचलकर, इनसे ३२ गुना जल डालकर अष्टमांश क्वाथ बनाना. फिर उसको छानकर उसमें दुगनी मिसरी डालकर शरबत बनाकर उसमें इलायचीका चूर्ण डलकर, रख छोडना. और गौके ठंढे दूधमें मिलाकर सुबह- शाम दो बार लेना. तीसरा प्रयोग—सतावर, चकवड, और खिरैटी इनकी जडोंका चूर्ण घीमें तलकर, चूर्णसे ड्योढा दूधका खोवा भूनकर उसमें मिलाना. फिर मिसरीकी चाशनी बनाकर उसमें ऊपरकी चीजें और लौंग, इलायची, जायफल, जावित्री और गोखरू, इनका चूर्ण, किशमिश, और बादामके मगजके टुकडे मिलाकर सबको चम्मचसे अच्छी तरह चलाकर एक थालीमें घी चुपडकर उसमें डाल देना. ठंडा हो जानेपर छुरीसे उसकी टिकियें बनाकर रख देना. सुबह-शाम इसमेंसे दो दो तोले पाक खाकर ऊपरसे आधपाव गौका ठंढा दूध पीना. यह पाक बल-पुष्टिकारक, और रक्तशुद्धिकर है. (१३) रक्तातिसारपर-सतावरके रसमें चीनी डालकर पीना. अथवा रस डालकर सिद्ध किया हुआ घृत पिलाना. अथवा सतावरकी जड पीसकर उसका रस दूधके साथ पीना. (१४) त्रिदोषजन्य मूत्रकृच्छ्र-पर-सतावरकी जडका क्वाथ चीनी और शहत डालकर पीना. (१५) शतावरीघृत (अम्लपित्तपर) सतावरका कल्क ६४ तोले घी ६४ तोले दूध २५६ तोले सब एकत्र औटाकर घृत शेष रखना. इस घृतके सेवनसे अम्लपित्त, वातपित्तविकार, रक्तपित्त, तृषा, मूर्च्छा, दमा और संताप ये रोग नष्ट होते है. (१६) २ रा शतावरी घृत-सतावरकी जडका गूदा ४ सेर और एक मन दूध इनके साथ चारसेर घी सिद्ध करके उसमें मिसरी, शहत, और पीपरका चूर्ण मिलाकर सेवन करना. यह वीर्यवर्धक, पुष्टिकारक , अम्लपित्तनाशक, और अन्यान्य पित्तविकारोंपर बहुतही लाभदायक है. (-१७) फलघृत-सतावरका रस १६ सेर, सवत्स गौका दूध १६ सेर, और मेदा, मजीठ , मुलहटी, कूठ, त्रिफला, खिरैटी, सफेद बिलाईकंद, काकोली, क्षीरकाकोली, असगंध, अजवायन, हलदी, दारुहलदी, हींग, कुटकी, नीलकमल, द्राक्षा, चंदन और रक्तचंदन ये चीजें प्रत्येक दो दो तोले, इनके साथ सवत्स गौके दूधसे बनाया हुआ ४ सेर घृत सिद्ध करना. यह अत्यंत वृष्य, स्त्रियोंके योनिरोग और उन्माद (हिस्टेरिया) पर रामबाण, एवं उनका वन्ध्यात्व दोष दूर करनेवाला है (१८) शतावर्यादिक्वाथ—(पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र-

पर (सतावर, कसेरु, दर्भकीजड, गोखरू, बिल्वकंट. शालिमूल, ईखकी जड, और, कासमूल इनका क्वाथ बनाकर. वह ठंढा होनेपर शहत और मिसरी डालकर पीना. (१९) प्रमेहपर—सतावरका रस दूधकेसाथ पीना. (२०) महाविष्णुतैल—सतावरका रस १६ सेर, दूध १६ सेर, जल ३२ सेर, और नागरमोथा, असकंध, जीवक, ऋषभक, कचूर, काकोली, क्षीरकाकोली जीवंती, मुल्हटी, देवदार, पद्मकाष्ठ, सैंधा नोन, जटामांसी, इलायची, दारचीनी, पत्थरफूल, कुठ, वच, रक्तचंदन, मंजीठ, कस्तूरी, सफेद चंदन, केसर, सारिवन, पिठवन, मसवन, मुगवन, कोंडिया लोबान, गठोना, नखी, और सौंफ इस प्रत्येकका ४ तोले कल्क डालकर, १६ सेर तिलीका तेल पकाना. यह सब तरहके वादीके रोगोंपर मसलनेसे उत्कृष्ट लाभदायक है. माता निकलनेपर सतावरकी जडका क्वाथ पिलानेसे उनका जोर कम होता है. सतावरके पत्ते घीमें पकाकर वह घी फोडों पर लगानेसे पुल्टीसका काम देता है.

कुटकी.

संस्कृत.—कटुका, जननी, तिक्तरोहिणी, कटुरोहिणी, चक्रांगी, मत्स्यपित्ता, बहुला, शकुलादनी, शतपर्वा, मत्स्यभेदी, कृष्णभेदा, महौषधि, अशोकरोहिणी, कृष्णा, कटु, काण्डरुहा, कट्वी. अंजनी, तिक्तिरिष्टा, केदार कटुका, आमघ्नी, साटनी, विप्रांगी, मत्स्यशकला, जनी, द्विजांगी, सिही, मत्स्यगांगी, कटंभरा, अशोका, मत्स्यविन्ना, तिक्ता, अतितिक्त, वामघ्नी, ज्वरहन्, रेचनी, कामघ्नी, मलभेदिनी. म०कुटकी. गु० कडू. बं० कट्की. क० केदारकटुकी. तै० काटकरोहिणी. कुमाऊन—कुरुवा. ता०कटुकरोहिणी. फा०अ० खर्बक हिंदी.ला. Picorrhiza Kurroa पिकोर्हिज़ा कुरोआ.

वर्णन.—यह छोटासा पौधा काश्मीरसे सिक्किमतक हिमालय पर्वतकी ९,०००फुटसे १५,०००फुटतककी उंची चोटियोंपर सर्वत्र विपुल होता है. 'गामी' साहबके कथनानुसार 'लाचुंगमें' ये पौधे बहुतसे होते हैं. कुटकी बहुवर्षायु वनस्पति है. इसकी जडें अंशतः मृदु और कुछ कुछ काष्ठमय होती है. पत्ते अंडगोल, चौडाईसे अधिक लंबे, जडकी तरफ सकडे और आगेसे चौडे होते हुए, कुछ कुछ चिकने और कटी हुई—झालरदार किनारवाले होते हैं. इनपर गहरे

नीले रंगके घने फूलोंके गुच्छ लगते हैं. दवामें इसकी जडका व्यवहार होता है जड हंसपक्षीके परके बराबर मोटी होती है. उसके ऊपर ऐंठी हुई, मैली सफेद या कुछ लाल-धूसर रंगकी छाल होती है. उसपर छोटे छोटे खड्डे और बहुतसे बगली जडोंके (उपमूलोंके) चिन्ह होते हैं. जडके अंदर काले रंगका गाभा होता है और कदाचित् इसी कारणसे इसको संस्कृतमें कृष्णा, कृष्णभेद, और देशभाषामें 'काली कुटकी' ये नाम दिये गये है. कुटकी बहुत कडवी होती है. और इसीलिये बहुश.इसको संस्कृतमें, तिक्ता, तिक्तरोहिणी, और मराठी वगैरे देशभाषामें 'कडू' अर्थात् 'कडुई' कहते है. इसके केदार कटुकी नामसे अनुमान होता है कि हिमालयपर गंगोत्रीके आसपास केदार नामक पर्वत विभाग पर कुटकीके पौधे बहुतही होते है.और वह वस्तुस्थितिसे पुष्ट होता है' वामघ्नी 'ज्वर-घ्न,' 'रेचनी' 'कामलाघ्नी' 'मलभेदिनी' ये नाम कुटकीके उस उस गुणके द्योतक है. पहले यूनानी हकीम 'काला हेलिबोर' और 'काली कुटकी' इन दोनोंको पर्यायनाम मानते थे. परंतु रॉयल साहबनें हिमालयकी वनस्पतियोंकी खोज करते समय यह बात प्रमाणित कर दी कि उक्त दोनों वनस्पतियें भिन्न भिन्न है

रासायनिक घटना-कुटकीका चूर्ण ईथरमें पकाकर उसे छान लेना और उसके अंदरकी ईथर बाष्परूपसे निकाल डालना. उस बरतनमें कुछ कुछ लाल-काले रंगका एक द्रव्य शेष रह जायगा उसे वैसाही रख छोडनेसे थोडी देरमें उसके सूच्याकार स्फटिक बनते हैं. उसमें पानी डालनेसे अथवा उसको गरम कर-नेसे स्फटिक नहीं बन सकते. इन स्फटिकोंमें राल (raisin) जैसे गुण होते है. कुटकीके इस सत्तको डॉक्टरलोग (Picrorrhizin) पैक्रोरेझिन कहते है. कुटकी का रासायनिक पृथक्करण करनेसे निम्नलिखित घटक द्रव्य पाये जाते है. मोम १.०६, कडुआ सत्त (पैक्रोरेझिन) १४. ९६, इसके पृथक्करणसे निकलनेवाला picrorhezetin पैक्रोरेझेटिन, ३. ९४, धान्य शर्करा (glucose) ११.६३, क्याथार्टिक ॲसिड अथवा रेचक अम्ल द्रव्य ९.३३, विदन अमोनियासे पिघल-नेवाला एकविशिष्ट द्रव्य ७.९२, एक गोंदविशिष्ट द्रव्य १४.१६, तंतुमय द्रव्य २४.००, आर्द्रता ५.७३ और राख ३.८२

गुणदोष-कुटकी शीत, चरपरी, कडुई, अग्निदीपक, मलभेदक, सारक,

रूखी, हलकी और रक्तरोग, शीत, पित्त, दमा, कफ, ... पुष्ठ, विषमज्वर, खांसी, क्षय, कामला, विषविकार और हृद्रोग इनका नाश करनेवाली है.

औषधप्रयोग—पीलियारोगमें—कुटकीका क्वाथ शहत डालकर पिलाना. अथवा कुटकीका चूर्ण चीनीके साथ खाना. एकाहिक विषमज्वरपर—कुटकीका क्वाथ पीपरका चूर्ण डालकर पीना. इससे खांसी और दमा इनसे युक्त एकाहिक पारीका ज्वर नष्ट हो जाता है. हिचकी और यांति इनपर—कुटकीका चूर्ण शहतके साथ खाना. कफपित्तज्वरपर—कुटकीका चूर्ण चीनीके साथ खाकर ऊपरसे गरम जल पीना.

सरकारकी ओरसे डॉक्टर डिमक भारतवर्षीय वनस्पतियोंकी खोज करनेके कामपर नियुक्त हुए थे. वे कुटकीके संबंधमें अनेक प्रकारके प्रयोगों का वर्णन करके अंतमें लिखते हैं कि, रोचक कार्यके लिये १० से १५ रत्ती कुटकीका चूर्ण दिनमें दो बार खाना. और जाडा बुखारकी पारी बंद करनेकेलिये खस, धनियां और दालचीनीसाथ ४०।५० रत्ती कुटकीका क्वाथ पिलाना. यह बहुतही लाभदायक है. पारीके ज्वरमें और जीर्णज्वरमें हमभी इस क्वाथका व्यवहार करते हैं. ऐसा विरलाही रोगी निकल आता है जिसको इससे लाभ न हुआ हो. कुटकी मृदु रेचक है. अपचन अर्थात् बदहजमीमें यह बहुत फायदा पहुंचाती है. छ माशे कुटकीका चूर्ण चीनीके साथ खाकर ऊपर गरम गरम जल पीनेसे खुलकर दस्त होता है. कुटकी, मुलहटी, दाख और नीमकी छाल हरेक दवा छ छ माशे लेकर सबका ३२ तोले पानीमें चतुर्थांश क्वाथ बनाकर पीनेसे पित्तज्वर नष्ट होता है. नेपालके भूतपूर्व रेसिडेन्सी सर्जन डॉ. गिमलेटने एक जगह लिखा है कि नेपालके आदमी तिब्बतकी सरहद्दपरसे कुटकी निकाल लाते हैं और जाडा बुखारपर और उससे अथवा अन्य किसी कारणसे तिल्ली फूल जानेपर ४ से ८ माशे तक कुटकी खिलाते हैं. इससे बहुत अच्छा आराम होता है. मद्रासके सर्जन खा. ब. मोहिउद्दीन शरीफ अपने अनुभवकी बात बताते हैं कि इस तरहका अपचन, अजीर्ण, पेटका

दर्द, आमांश, और पारीके ज्वर इन रोगोंमें कुटकी उत्कृष्ट लाभजनक है सर्जन मेजर टॉम्सन लिखते है कि जलोदरमें कुटकीका अष्टमांश अथवा उससेभी कुछ जोरदार क्वाथ दिनमें तीन चार बार पिलानेसे मलमूत्रद्वारसे खूब पानी निकल जाता है और पेट हलका होकर, सूजनभी उतरती है. डॉ. टॉमसननें यह प्रयोग कई-बार सफलताके साथ अजमाया था.

रेवंदचीनी.

संस्कृत-रेवदचीनी, पीता, गंधिनी, पीतमूलिका, पट्टपर्णिका, क्षीरिणी, कांचनक्षीरी, कर्पणी, तिक्तदुग्धा, हैमवती, हिमदुग्धा, हिमावती, हिमाद्रिजा, पीतदुग्धा, यवत्वची, यवोद्भवा, हैमी, हिमजा, रेचना. म. रेवाचिनी. गु. रेवंचीनी. बं. रेऊचीनी. चिनी–ऱ्हांग हांग. नेपाली–पदमचाल. गढवाली–अरचू (कू). अफगानी–रवाश चुक्री फा० रेवंद अ० रावंद, इं. Rhaubrb ला० Rheum I modi, R. officinale

वर्णन—यह एक छोटासा सुंदर पौधा है. इसकी उंचाई लगभग ५।६ फूट होती है. पृथ्वीमेंसे इसका एक मुख्य अथवा मध्यवर्ती स्तंभ निकलता है और उसके चारों ओरसे चपटे डंठलवाली शाखाएं निकलती हैं. इसके पत्ते पीपलके पत्तोंकी तरह गोल, और चौडे होते हैं. वे ऊपरकी ओरसे फीके हरे रंगके और नीचेकी तरफ मटमैले रंगके चिकने होते है और उनपर छोटे छोटे रोंवें होते हैं. फूल लाल रंगके होते हैं और अव्यवस्थित मंजरीपर लगते है. केवल Rheum officinale जातिके रेवंदके वृक्षोंपर सफेद रंगके फूल लगते है. इसपर कोकमके फलोंके (वृक्षाम्ल) बराबर फल लगते हैं. रेवंदचीनीकी अनेक जातिएं है. उनमेंसे ५।६ मुख्य हैं. देश भाषाओंमें उन सबको रेवंदचीनीही कहते हैं. परंतु अंग्रेजी उद्भिज्जशास्त्रवेत्ताओंनें उनकेलिये अलग अलग संज्ञाएं निर्धारित की हैं. वे ये हैं:—(१) R. emodi (२) R. officinale (३) R. moorcraftiandm (४) R. webbianum हमनें यहापर जो चित्र दिया है वह R emodi जातिका है. रेवंदचीनीके वृक्ष रूम, तुर्कस्तान, चीन, तिब्बत, इन दे-

शोंमें: दक्षिणमें मल्बार, ट्रावनकोरमें; महाराष्ट्रमें खंडाला और गरघाटकी पहाडीय और उत्तरमें काश्मीरसे नेपालतक ९००० से. १६००० फूटतककी उंची हिमालय की चोटियोंपर उत्पन्न होते हैं. खंडाला पहाडीमें इस वृक्षको 'तावीर' कहते हैं. उपर कही हुई जातियें हिमालयमें होती हैं. R palmatum जातिके रेवंदचीनीके वृक्षोंकी फसल दोसो या तीनसो सालसे चीनके कन्सू प्रांतमें कुकुनोर तालावके आसपास और पिछली सदीसे एशियान्तर्गत रूसके इलाकेमें बहुत करने लगे हैं. परंतु उनसे चीनकीसी रेवंदचीनी नहीं निकलती. इंग्लंडमें बॅनबरीके पासवाले बोडीकॅाट नामक ग्राममें वहांके लोग R Rhaponticum जातिक रेवंदचीनीकी फसल बहुत विस्तारसे करते है और बाजारमें जो 'बॅनबरी' नामक रेवंदचीनी विकती है वह वहींसे तैयार होकर आती है. प्रयत्नके साथ तैयार करनेपर यह चीनी रेवंदचीनीकीसी बढियां बन सकती है. चीनी रेवंदचीनीकी अपेक्षा यह कम कडवी होती है. किन्तु चिकनाई और कसैलापन इसमें अधिक होता है. इसके सिवाय इसकी जड चीनी रेवंदचीनीकी जडकी अपेक्षा अधिक छिद्रबहुल, मुलायम और दरदरी होती है. बहुश: इसीका चूर्ण करके बाजारमें बेचनेके लिये रखते हे. हिमालयपर उत्पन्न होनेवाले वृक्षोंसे रेवंदचीनी निकालनेकी तरफ यहावालोंकी उपेक्षासे और विलायतसे आनेवाली रेवंदचीनीके सस्ते भावसे हिंदुस्थानमें प्रायः सर्वत्र उसीका व्यवहार होता है. डॉ. डिमक कहते हैं कि चीनी व ईस्टइंडियन रेवंदचीनी विना खासतौरपर मंगाये हिंदुस्थानमें नहीं आती है. चीनमें कानसू और झेश प्रांतोंके पहाडोपर रेवंदचीनीकी पैदाइश होती है. वहासे तैयार करके विलायत भेजते है. तिब्बतके आग्नेय प्रदेशमें जो रेवंदचीनी पैदा होती है उसका कुछ कुछ व्यवहार और व्यापार बंगालियोंमें होता है. सिकिमके दक्षिण प्रांतके गडरिये रेवंदचीनीकी जडें निकालकर इकट्ठी कर रखते हैं. परंतु मुसलमान व्यापारियोंके सिवाय और कोई उनको नहीं खरीद लेता. डॉ. कन्हैयालाल दे कहते है कि नेपालके पहाडमें rumex nepalenses जातिकी रेवंदचीनी उत्पन्न होती है उसकी जडें बंगालके पसारियोंके यहां मिलती हैं.

इतिहासके अनुसन्धानसे मालूम होता है कि ई. स. १७३२ के सालसे इधर

जगदहितेच्छु प्रेस मु०
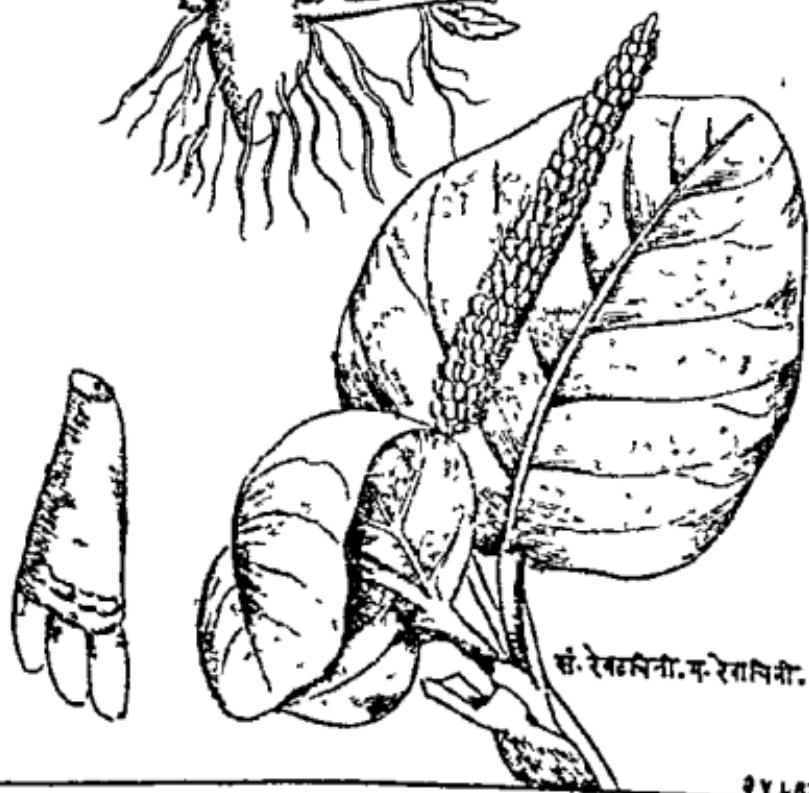
रेवंदचीनीको गतपके डॉक्टर जानने लगे. उससे पहले केवल चीनके लोग इसको जानते थे. क्योंकि लगभग ३००।३२५ साल पहले लिखे हुए एक चीनी भाषाके वैद्यक ग्रंथमें इसका गुणवर्णन पाया जाता है., हमारे आर्य वैद्य इसको बहुत प्राचीन कालसे जानते आये है. आत्रेय महर्षिनें 'क्षीरिणी' नामसे 'शोधन' (दस्तावर) औषधियोंमें इसकी गणना की है. इसके अतिरिक्त सात आठ सो वर्ष पूर्वके राजनिघंटु ग्रंथम इसके जो गुणदोष बतलाये गये हैं वे आजकलके युरोपियन शोधकोंके वर्णनसे ठीक मिलते हैं. इस विषयके आरंभमें क्षीरिणी, काचनक्षीरी, हिमदुग्धा, इत्यादि जो रेवंदचीनीके संस्कृत नाम लिखे है, उनसे यह बात निकलती है कि इस वृक्षकी टैनियें तथा पत्तोंके डंठलोंसे सोनेके रंगकी पीला दूध निकलता है. युरोपियन डॉक्टरोंनें इस पीले दूधका कहीं उल्लेख नहीं किया है. परन्तु इससे हम तो यही समझते हैं कि दूध देनेवाली जातिके वृक्षोंका उनको नहीं पता लगा था. चीनके सौदागर जब रेवंदचीनीकी जडें देशान्तरोंमें भेजते हैं तब ऊपरकी छाल निकाल डालते हैं और उनके छोटे छोटे टुकडे करते है ताकि कोई उनको पहचान न सके. कुछ साल पहले यानी चीनकी सरहदसे रूसी सरहद मिल जानेके पूर्व, रेवंदचीनी इतनी महंगी थी कि १।१२० रुपये सेरके भावसे बिकती थी.

प्रोफेसर फ्लूकिगर और डॉक्टर हॅनबेरिकी राय है कि रेवंदचीनी–जिसे अंग्रेजीमें 'रुबार्ब' (Rhubarb) कहते हैं–उसकी विज्ञता युरोपियन डॉक्टरोंको यूनानी (ग्रीक) हकीमोंसे प्राप्त हुई. रेवंदचीनीकी जडें पुराने समयमें चीनाई, तातार और तिब्बतकी ओरसे भिन्नभिन्न मार्गसे यरपमें जाती थीं. और उस उस मार्गके अनुसार 'आयसिडोर' नामक एक लाटिन ग्रंथकारनें उनके भिन्न भिन्न नाम नियत किये थे. वे इस प्रकार थे. १ रेवद शैनी (चीनी) २ रेवद बर्बरिकम् ३ रेवद तुर्कीकम् "रेवद बर्बारिकं" से र्हेबर्बरेक और उससे अंग्रेजी 'रुबार्ब' ये अपभ्रंश बने. असली रुबार्बकी उपज और उसके स्थानके विषयमें अंग्रेज तथा रूसी अधिकारियोंनें बहुत खोज की. परन्तु चीनके बादशाहनें इस विषयमें ऐसा सख्त हुक्म दे रखा था, कि कोई परदेशी आदमी रेवंदचीनीके उत्पत्तिस्थानके पास जाने नहीं पाता था और यदि किसी

सूरतसे कोई वहां पहुंच ही जाता तो उसका सिर काट नालिया जाता था. इस सख्तीके मारे सबकी खोज व्यर्थ हुई.

रेवंदचीनीके कन्दमें एक पीला रंजक द्रव्य, एक राळमय द्रव्य और एक अवशिष्ट द्रव्य इस प्रकारके तीन द्रव्य होते है. इसके सिवाय 'इमोडीन' नामका Chrysophanic acid क्रिसोफ्यानिक ॲसिड— रंजक द्रव्यकी प्रकृतिका— सत्त निकलता है. कुछ देरतक हवामें सूखनेसे उसके स्फटिक बनते हैं. रेवंदचीनीका गुण इसीमें होता है. वह अच्छी सारक होनेके साथ साथ स्तंभन कार्यभी करती है. इसीसे युरोपियन लोग मलशुद्धिके लिये रुबार्बका विशेष व्यवहार करते है. डॉक्टर लोग इसके फांट, निष्कर्ष, अर्क, आसव अवलेह, गुटिका, और मिश्र चूर्ण इसप्रकार सात कल्प बनाते है. मिश्रचूर्ण दो बरसकी उमरके बालकोंको दिया जाता है. इसमें रेवंदचीनी, सोंठ और म्याग्निशिया मिलाते है.

गढवालके मोटिये 'र्‍हियम इमोडी' (यहा दिये हुए चित्रकी) जातिकी रेवंदचीनीकी जडें, मंजीठ और क्षार इन तीनोंकी मिलावटसे कपडोंको लाल रंग देतें है. इसके सिवाय इसके वृक्षकी नालें उबालकर, अथवा योंही कूटकर नमक मिरच मिलाकर खाते है, अथवा सुखाकर रखते हैं और उसकी शाक बनाकर खाते है. उसीतरह मुरब्बा, अचार वगैरह भी बनाकर खाते हैं. इससे भोजनमे स्वाद आता है और दस्त खुलकर होता है. डॉ॰ सर जार्ज वाट जब लाहौल प्रदेशमें गये थे तब परीक्षा करनेकेलिये उन्होंनें रेवंदचीनीके वृक्षकी नाले उबालकर शाकके तौरपर खायीं जिससे उनको खूब दस्त हुए. 'र्‍हियम मूरक्रॉफ्टियेनम्' जातिकी जडोंके गुण 'र्‍हियम इमोडी' के समान ही है. वे ऊनी कपडेको पीला रंग चढानेके काम आती हैं. पंजाबके सियालकोट नगरमें आगे लिखी हुई रीतिसे उनको रंगते देखा गया है. रेवंदचीनीकी जडोंका चूर्ण बनकर दो दिनतक ठंडे पानीमें भिगो रखते हैं. फिर उसे आगपर रख देते है. जब वह पानी खौलने लगता है तब उसमें ऊनी कपडा डुबा देते हैं जिससे फीका पीला रंग चढता है. उसीमें थोडा हलदीका चूर्ण डाल देनेसे भडकीला रंग होजाता है. 'र्‍हिअम नोबाइल' जातिकी

रेवंदचीनीके पत्ते सुखानेपर तमाखूका काम देते है. ' तिब्बतमें न्हियम नोवाइल हीका और एक छोटासा भेद है. उसका वहांवाले तमाखूके बदलेमें उपयोग करते हैं. तिब्बतवाले उसे ' चुला ' कहते हैं. न्हियम ' स्पिमिफॉर्म 'जातिके वृक्ष अफगानिस्थानके बहुतसे भागोंमें खुदबखुद पैदा होते है. ये जब हरे होते है तब इसके पत्रदंडोंको वहांवाले ' रेवश ' कहते हैं. इन वृक्षोंके चारों ओर पत्थर और कंकरके ढेर लगानेसे जब वे सफेद हो जाते है तब उन्हें ' चुकरी ' कहते हैं. अफगान लोग चैत्र–वैशाखमें इसके हरे नाल पेशावरमें ले आते है. उन्हें वहांके लोग पकाकर अथवा वैसेही खा जाते हैं. उन्हें सुखा रखते हैं और उनका अचारभी डालते है. रेवंदचीनीकी जडें उबालनेसे अथवा भूंजनेसे उनका बहुतसा रेचक गुण नष्ट होता है. इस वनस्पतिका प्रधान उपयोगी भाग उसकी जड है. और इसका प्रधान गुण रेचक है. इस रेचक गुणके अंगभूत औरभी कितनेही गुण इसमें हैं. ' शिला ' (Litho) प्रेसकी कॉपी जिस पीले कागजपर लिखी जाती है उस कागजको पीला करनेके लिये रेवंदचीनीका शीरा ही लगाया जाता है. रंगके काममेंभी यह अनेक प्रकारसे उपयोगी है.

औषधीप्रयोग– (१) रेचक–रेवंदचीनीका शीरा रोगीके बलानुसार एक या डेढ माशा पीसकर गुड, चीनी या शहतमें चाटना. इससे दस्त होंगे. बंद करनेके लिये घी और चावल खाना. (२) मूत्ररेचक–रेवंदचीनी, शोरा, कबाबचीनी और इलायची इनको समभाग लेकर सबका चूर्ण करे. और उसमेंसे ६ माशे चूर्ण, पावभर पानी और पावभर दूध एकत्र करके दोनोंको खूब उलट पलट करके उसमें मिलाकर ले लेना. इससे खूब पेशाब होकर मूत्र विकार हलका हो जाता है. (३) बच्चोंके शरीरपर फुन्सियां उठती हैं उनपर– रेवंदचीनीकी लकडी पानीमें घिसकर लेप करना. (४) बच्चोंके लिये रेचक– रेवंदचीनीकी जड अथवा शीरा बच्चेके बलानुसार दूधमें घिसकर पिलाना. (५) कमलापर– सात दिनतक रेवंदचीनी दूधमें घिसकर पीना. **सूचना**– रेवंदचीनीकी अधिक मात्रा खानेसे भयंकर परिणाम हो सकता है. अतः उसको देते समय बहुत सावधानी रखनी चाहिये.

अगर.

संस्कृत–अगरु, कृमिज, लोह, राजाई, वंशक, लघु, लोहाख्य, जोंगर, कृष्ण, वर्णप्रसादन, पिच्छिल, भृंगज, पातक, अनार्यक, अनार्यज, असार; अग्निकाष्ठ, कृमिजग्ध, काष्ठक, प्रवर, योगज. म. गु. यं क. अगर. तै. अगुरुचेट्टु. तु. हागलगन्ध. मला. अकिल. फा० कशबेवबा. अ० उदगर्की. ग्रीक– अगेलोकन. इं. Eaglewood इगलवुड. ला. Aqualaria agallocha अक्वेलेरिया ॲगालोका.

वर्णन—अगर वैद्यकमें पांच प्रकारका माना है. कृष्णागरु, दाहागरु,काष्ठागरु, स्वाद्वगरु और मंगल्यागुरु. इस वृक्षके सम्बन्धमें प्राचीन पुस्तकोंसे नीचे लिखी हुई बातें मालूम होती है. प्राचीन ' याहुदी ' लोग ' अहलोट ' नामसे इस वनस्पतिको जानते थे. यूनानी और रोमन लोग इसे ' अगेलोकन ' कहते थे. प्राचीन अरबी लोग उसे ' अघलुखी ' कहते थे. पीछेसे यह नाम बदलकर ' ऊद हिंदी ' कहने लगे.

अगरवृक्ष बंगालके पश्चिमोत्तरीय सिलहट जिलेके आसपास ' जेंटिया ' पहाडोंपर होते है. आसाममेंभी कई जगह ये वृक्ष उत्पन्न होते हैं. बंगालके दक्षिणमें उष्णकटिबन्धवाले प्रदेशोंमेंभी ये होते है. चीनकी सरहद्दके पास ' नवका ' शहरकी अधीनतामें ' चतिया ' नामका टापू है उसमेंभी अगर होता है और मलबारमेंभी कहीं कहीं ये पाये जाते है.

अगरका वृक्ष बडा और सदा हरा रहता है. इसका पेड और इसकी टेनियां बहुधा टेढी–तिरछी होती है.इसके पत्तोंकी आकृति अरडूसेके पत्तोंकीसी होती हैं. पत्तोंके डंठल छोटे होते हे. इसपर एप्रिलमें फूल लगते है. और आगस्टमें इसका बीज पकता है. इसकी लकडी नरम होती है और उसके छिद्र राल जैसे सुगंधि पदार्थसे भरे रहते है. इस सुगंधि पदार्थको वृक्षोंसे गोंद निकालनेकी रीतिसे निकाल लिया जाता है. अगरकी लकडी जल्दी सडने लगती है और सडनेवाली लकडीसे एक तरहकी खास सुगंधि निकलने लगती है. इस सुगंधिको जल्दी पैदा करनेके लिये अगरकी लकडी तर जमीनमें गाड रखते है. इसतरह गाडने

पर जो भाग सडने लगता है वह चिकना, भारी और काला होता है. फिर उसके श्रेष्ठ-कनिष्ठ प्रकार बनानेके लिये उसके टुकडे करके पानीमें छोडते हैं. जो बिल्कुल नीचे बैठ जाता है उसे 'गर्की' जो आधा डूबता है उसे 'नीमगर्की' और साराही पानीके ऊपर तैरता उसे 'समाले' कहते है. अंतिम प्रकारका अगर साधारण होता है. गरकी काला होता है और अन्य सब प्रकारके अगर फीके भूरे रंगके होते हैं. आयुर्वेदमें अगरके पांचप्रकार माने हैं. उनके नाम आरंभहीमें दिये हैं. व्यापारियोंकी परिभाषामें ' हिंदी, समंदरी, कनरी, व समंडली ये चार जातियां मानी जाती हैं. ये नाम बहुधा उस उस जातिके उत्पत्तिस्थानानुसार दिये गये है. उक्त चार जातियोंमेंसे पहिली जातिका अगर काला, दूसरा पहिले की अपेक्षा अधिक चिकना (तलिहा) तीसरा फीके रंगका और चौथा बहुत सुगंधि होता है. कहीं कहीं 'बरी' और 'जबली' इन्ही दो जातियोंका व्यवहार होता है. उनमेंसे पहिली जातिके अगरकी लकडी सफेद होती है और दूसरीपर काली लकीरें होती हैं. दवामें बरतने योग्य उत्तम अगर सिल्हटकी ओरसे ही आता है और उसका गरकी अगर अथवा गरकी उद कहते हैं. वह कडवा, किंचित् कसैला, सुगंधी, और तैलयुक्त होता है. दवामें अगरका बुरादा या चूर्ण कभी नहीं बरतना चाहिये. क्यों कि पेदमान लोग अच्छे अगरका चूर्ण करके उसे पानीमें भिगो रखते हैं. अथवा लकडीको बादामोंके साथ कूटकर उसकी सुगंधि, तैलांश वगैरह बादामोंमें खींच लेते है और बादामोंका अगरके गुणोंसेयुक्त तेल निकालकर अगरका चूर्ण बाजारमें बेचनेके लिये भेज देते हैं. इस गुणहीन बुरादेके व्यवहारसे लाभ नहीं होता है. इसके सिवाय बुरादेमें चंदन और तगरकी मिलावटभी हो सकती है. ' इल्तियारत इबदिआई ' के रचयितानें ऊपर कही हुई सारी जातियोंसे एक बिल्कुल भिन्न जातिके अगरका वर्णन किया है. यह अगर जावा टापूसे दस दिनकी यात्राके दूरीपर ' चित्त ' नामक बंदर है वहासे आता है. इसकी कीमत सोनेके बराबर होती है. आगपर रखेबिना इसमेंसे सुगंध नहीं निकलता है. किंतु कुछ देरतक मुट्ठीमें दबा रखनेसे हाथकी उष्णतासे उसमेंसे मीठी मीठी सुगंध निकलने लगती है. अगरहीकी जातिका नगर नामका एक सुगंधी वृक्ष हिंदु-

स्थानमें सर्वत्र होता है. ' वह बहुत सस्ता होता है. इस कारण बेइमान सौदागर अनभिज्ञ ग्राहकोंको अगरके नामसे तगरही बेचते हैं. बंबईके बाजारमें तीन प्रकारका अगर बिकनेके लिये आता है. और उसका ' सियाम' अथवा 'मावरधी' ' सिंगापुरी ' और ' गांगुली ' इन नामोंसे व्यवहार होता है. इसके सिवाय झाभिनार (जंगबार) सेभी अगर आता है. और कहीं कहीं बनावटी अगरभी नजर आता है. बाजारमें जो अनेक प्रकारके अगरके नमूने देखनेमें आते है उनका रंग धूसरसे बदलते बदलते काले—धूसरतक पहुंच जाता है. अगरका रंग उसमें जो गोंदके सदृश चिकना पदार्थ रहता है उसकी न्यूनाधिकतापर निर्भर रहता है. पूर्वोक्त जातियोंके अगरपर काले रंगकी लकीरें होती हैं. सर्वोत्तम अगरकी लकडीमें छोटे छोटे गढ्ढे होते है और वह पानीमें नीचे बैठ जाता है. उसका टुकडा दांतोंके तले दबानेसे नरम होता है. उसका स्वाद कडुवा होता हैं, और अग्निपर रखनेसे सुगंध निकलने लगता है. बनावटी अगर जलानेसे जलते हुए रबरकीसी बदबू निकलती है.

गुण—अगर—सुगंधि, उष्ण, कडवा, चरपरा, स्निग्ध, मंगलकारक, रोचक धूप जलाने योग्य, पित्तकर, तीक्ष्ण, वायु, कफ, कर्णरोग, कुष्ठ इनको नष्ट करनेवाला, और शरीरपर लेप लगानेके लिये उत्तम है. 'कृष्णागरु— चरपरा, कडवा, उष्ण, लेप करनेसे शीतल, पानीके साथ लेनेसे पित्तनाशक, पौष्टिक और हलका है. कुछ चिकित्सकोंके मतमें इसका चूर्ण पित्तकर और कर्णरोग, नेत्ररोग, त्रिदोष, दाह, त्वग्दोष, कफ और वायु इनको नष्ट करता है. दाहागरु— किंचित् उष्ण, सुगंधि, चरपरा, बाल बढानेवाला, कांतिवर्द्धक और बालोंको स्वच्छ करनेवाला है. काष्ठागरु—चरपरा, गरम, लेप करनेसे रूक्षता लानेवाला है और मुखरोग, वांति, वायु, तथा कफ इनको नष्ट करता है. स्वाद्वगरु— कसैला, गरम, और नस्य देनेसे वातनाश करनेवाला है. मंगलागरु— ठंडा, सुगंधी, और योगवाही यानी जिस चीजके साथ मिलजाय उसीके गुणोंकी वृद्धि करनेवाला है.

अगरके तेलका खुशबूके लिये उपयोग करते है.' कोचीन चीनमें अगरके पेडकी छालके कागज बनाते है. ज्वरमें बहुत प्यास लगती होतो अगर

डालकर गरम किया हुआ जल पीनेसे, शांत होती है. यूरपमें गठिया तथा इसी प्रकारके अन्य वातरोगोंमेंभी इसका उपयोग किया जाता है.

औषधीप्रयोग—(१) त्वग्दोषके लिये—अगरका लेप करना. (२) दाहपर—अगरका लेप करनेसे दाह शांत होता है. (३) वल्मीक नामका घुटनोंपर रोग होता है उसपर—अगर, इलायची, चमेलीकी पत्ती, नीमकी छाल, भिलावे, मनशील और हरताल इन सबको कूटकर चौगुने तिल्लीके तेलमें डालकर खूब पकाना और इस तेलकी मालिश करना. (५) सुगंधी उबटण.—अगर, कापूर, केशर, लोभान, उद्र, लोप, सुगंधी खस, काली खस, और नागरमोथा इन चीजोंका उबटन शरीरमें लगानेसे सुगंध छूटता रहता है. (६) कपडोंमें खुशबू आनेके लिये उनपर अगरका पानी छिडकते हैं (७) फोडेमें बहुत दर्द होता हो तो उसपर कृष्णागरको घिसकर लेप लगाना.

अगरबत्ती बनानेकी रीति—कृष्णागरु ४ भाग, खस २ भाग, नागरमोथा ४ भाग, तगर २ भाग, कचूर २ भाग, चंदन १८ भाग, पत्थरफूल २ भाग, प्रियंगु २ भाग, गुलाबकली सूखी २ भाग, नखी ४ भाग, गूगल २ भाग, लोबान ४ भाग, शिलारस १८ भाग, कस्तूरी १ भाग, मैदालकडी ९ भाग इन चीजोंको एकट्ठी करके कस्तूरी और शिलारसके सिवाय और सबको कूटकर महीन कपडछन चूर्ण बनावे. यह चूर्ण और कस्तूरी शिलारसमें मिलाकर उसमें कालापन लानेके लिये थोडी कोयलेकी बुकी और चिकनाईके लिये गुड मिलाकर सबको एक जगह सान ले. फिर बांसको चीरकर उसकी बारीक बारीक सलाइयें निकालकर उनपर यह मसाला चिपकाकर उन्हें धूपमें सुखावे. इन बत्तियोंको बनाते समय हाथोंको मसाला चिपकने न पावे इस लिये ऊपर कहे हुए द्रव्योंका सूखा चूर्ण अथवा और कोई खुशबूदार चूर्ण लगावे.

रीति २ री—चंदन आधा तोला, कृष्णागरु पाव तोला, देवदार ३॥ तोले, प्रियंगु १ तोला; ब्राह्मी ४ तोले; नखी ९ तोले, शहत ९ तोले, कोडिया लोबान ९ तोले, गूगल २ तोले, मैदालकडी ४ तोले, चीनी ९ तोले,

अगर ११ तोले, कस्तूरी आधा तोला, और अंबर ।।। तोला, इन सब
ओंका चूर्ण करके ऊपर बतायी गयी रीतिसे शहतमें वत्तियें बनावे. जो
बहुत महंगा होनेके कारण भी लोग उसका व्यवहार नहीं कर सकते वे कच
पैदा होनेवाले 'आशापुरी धूप' का उपयोग करें. यह बहुत सस्ता होता है,
रंतु इसकी सुगंधी करीब करीब अगर जैसी ही होती है.

रीति ३ री—कपूर २ तोले, प्रियंगू २ तोले, चंदन २० तोले, अगर
तोले, तगर २ तोले, कृष्णागर ४ तोले, देवदार २ तोले, जटामांसी २ तो
पान या दौना ८ तोले, काला गूगल ४ तोले, मरुआ २ तोले, उद उमदह ४ तो
ले, नख २ तोले (तावेपर भूनकर जब पीले पड जाय तब लेना.) नागरमो
२ तोले कस्तूरी ।।। रत्ती और मैदा लकडी ५ तोले इन सब चीजोंका क
डछन महीन चूर्ण बनाकर ४ तोले शिलारसमें मिलाना. फिर सेरपीछे १
तोलेके हिसाबसे उमदह गुड और पावभर कोयलेका चूर्ण मिलाकर गरम पा
नीसे सबको सानना. और उपर्युक्त रीतिसे बत्तियें बनाना. एक सेर द्र
व्यके लिये १२ तोले सलाइयें दरकार होती हैं. यदि उपरहीसे बहुत खुश
बूदार बत्ती बनानी हो तो कस्तूरीका पानी और सब चीजोंको साननेके बाद मि
लाना. यह अंतिम रीति बहुत सुलभ और कमदामकी है. हम इसी री
तिसे अगरबत्ती बनाते हैं. घरमें अगरबत्ती जलानेसे दुर्गंधि तथा दूषित वायु
नष्ट होकर चित्त आल्हादित होता है.

जलनीम.

संस्कृत—जलब्राह्मी. म. गु. बांग. बं. विम्म. क. निरुब्राह्मी
किरे ब्राह्मी, नीर ओंदेलेग. ता. मला० निर ब्राह्मी. ला. Herpestis monneira
हरपेस्टिस मोनीरा.

वर्णन—जलनीमके छोटे छोटे पौधे जिस भूमीमें पानी जमा रहता है या
नमी बहुत रहती है ऐसी भूमिमें बहुत होते हैं. यानी जैसा कि इसके ना-
मसे प्रतीत होता है उसीके अनुसार जिस धरतीमें जलका अंश अधिक होता
है उसी जगह ये उगते हैं. ये पुरका शाककी तरह होते हैं और

मधुर प्रेस

बेलकी तरह जमीनपर फैल जाते है. जलनीम बहुवर्षायु वनस्पति है. इसको अनेक पत्रदण्ड निकलते हैं. वे गोलाकार, चिकने, और गांठदार—जुडे हुए होते है. पत्ते एक दूसरेके सामने लगते है. वे विना डंठलके पत्रदंडहीसे सटे रहते है. पत्ते वारीक, चिकने, तथा रसाल होते है. इसपर नीले [illegible]थवा सफेद रंगके घंटाकार फूल लगते है. उनकी किनार पांच खंडोंमें वि[illegible]क्त रहती है. इसपर अंडगोल फल लगते है. हरेक फलमें दो दो खाने [illegible]ते हैं और उनमें बीज रहते है. इसके पत्ते बहुत कडवे होते हैं.

जलनीम रसकालमें कडवी, उष्ण, रेचक, वृष्य और गठिया, सूजन, कुष्ठ, [illegible]ण, पित्त, कफ और मिरगी इन रोगोंका नाश करनेवाली है. बादीसे [illegible]ोडोंमें दरद होता हो या वे अकड गये हों तो केवल जलनीमका रस या उसे [illegible]ीमें मिलाकर पिलाना.

हुरहुज—(सोंचली.)

संस्कृत—आदित्यभक्ता, वरदा, अर्कभक्ता, सुवर्चला, अर्ककान्ता, सूर्यलता, [illegible]ौरी, मण्डूकपर्णिका, सुतेजा, अर्कहिता, रवीष्टा, सुरसम्भवा, मण्डूकी, सत्यना[illegible]ा, देवी, मार्तण्डवल्लभा, विक्रान्ता, भास्करेष्टा, सूर्यकान्ता, सुखोद्भवा, आदि[illegible]त्यपर्णी, दिव्यतेजा, शीतवृक्ष, रविवल्ली, रवौषधि, , अर्कपुष्पी, मूलपर्णी, वृ[illegible]दिका, रविप्रिया, प्रार्या, ब्रह्मसुवर्चला, रविक्रान्ता, महौषधि, सूर्यावर्ता, रवि[illegible]पीता, सुकर्कला, सूर्यभक्ता, आदित्यवल्लभा, कपोतवंका, सत्यनाम्नी. म. सूर्य[illegible]मुखी. गु. सूरजमुखी. बं. हुडहुडे, बनशलते. क. सूर्यकान्ति, आदित्यभक्ति. [illegible]ते. सूर्यकान्तिपु. ता. तु. सूर्यकाति. फा. गुले आफतावपरस्त. अ. अरदमून. इं. Sunflower सनफ्लॉवर ला. Helianthus anus हेलिंट्थस एनस.

वर्णन—हुरहुजके पेड हर तरहकी धरतीमें हो सकते है. परन्तु लालमिट्टी-वाली और नमी रखनेवाली जमीन अधिक अनुकूल होती है. ये खुदबखुद उगनेवाले नहीं है. किन्तु धानकी तरह इसकी बोवाई करनी पडती है. इसकी फसल चार महीने रहती है. इसके पेड चार पाच हाथ तक ऊंचे बढते हैं.

इसके पत्ते हृदयाकार, कुछ लंबे, पतले, बडे, खरदेर और आलरकीसी कटी हुई किनारवाले होते है. उनपर रोवे होते है. और वे ऊपर नीचे लगते है. उनकी लम्बाई १२।१६ उंगल और चौडाई १०।१२ उंगलतक होती है. पत्तोंके डंठल लंबे होते है. हुरहुनके पत्रदण्डका घेर ९।६ उंगलका होता है. उनपर सफेद रोवे होते हैं. हरेक पत्तेके बगलमेंसे एक फूल निकलता है. बीचवाले पत्रदण्डके सिरेपर जो फूल लगता है वह सबसे बडा होता है और सबसे पहले फूलता है. पुष्पकोशके चार परदे रहते है. फूल हाथके तलुवेके बराबर या उससेभी बडा, गोल, अनेक पखडियोंवाला होता है और उसका रंग पीली कनेरके फूलोंकासा पीला होता है. उसके मध्यभागमें किनल्ककोष रहता है. उसके बीचमें कसूमके बीज (करं) जैसे सफेद बीज होते है. एक पेडपर अधिकसे अधिक ४० फूल लगते है और एक फूलमे कमसे कम ५० और अधिकसे अधिक ८०० बीज होते है.

इस पेडमें यह चमत्कार है कि इसके फूलका मुंह सदा सूर्यकी तरफ रहता है. प्रातःकालमे सूर्योदयके समय वह पूर्वाभिमुख होता है. दो पहरको सामने होता है और शामको पश्चिमकी ओर होता है. सूर्यकी गतिके अनुसार यह फूलभी अपना मुह फेरते रहता है. हुरहुनके वृक्ष अनेक प्रकारसे अत्यंत उपयोगी होनेके कारण उनके विषयमें हम बरसोंसे अनेक प्रकारसे खोज कर रहे हैं. जिसके परिणाममें हमने आगे लिखी हुई बातें सिद्धान्त रूपसे स्थिर की हैं. आश्लेषा मघा नक्षत्रोंमें इसकी बोवाई करनेसे बहुत बीजे निकलता है. आर्द्रा नक्षत्रपर बो देनेसे यदि हस्त नक्षत्रमें बहुत वर्षा न हुई तो उससेभी अधिक बीज निकलता है. पूर्वा और उत्तरामें बोवाई करनेपर धींवालीके दिनोंमे थोडा बहुत पानी बरसनेसे उक्त दोनोंकी अपेक्षा अच्छी फसल होती है. नारीके द्वारा बीज बोनेकी अपेक्षा यदि हाथसे बोवाई की जाय तो अच्छी फसल होती है.

आरोग्यशास्त्रकी दृष्टिसे यह वृक्ष बडा भारी महत्व रखता है. इसके फूलके निरंतर सूर्याभिमुख रहनेके कारणही इसको आदित्यभक्ता, अर्कभक्ता, अर्कपु-

णी, रविप्रिया इत्यादि समस्त अन्वर्थक नाम दिये गये है यह हम ऊपर ब-तला चुके है. इसके अतिरिक्त इसके गुणोंसेभी उसकी भक्तिका पूरा प्रमाण मि-लता है. जिस प्रकार ईश्वरकी अनुग्रहशक्ति उसके मनुष्य भक्तोंमें आती है उसी प्रकार भगवान् सहस्त्ररश्मिकी अनुग्रहशक्ति उसके इस उद्भिज्जभक्तमेंभी पूरे तौरपर वास करती है. आरोग्यशास्त्रदृष्ट्या यह बात निर्विवाद सिद्ध हो चुकी हैं कि जिस स्थानमें सूर्यके प्रखर किरण नहीं पहुंच सकते उसमें सदा भांति भांतिके रोगोंका निवास रहता है. वह स्थान कदापि नीरोग नहीं रह स-कता. इसीसे दलदलके प्रदेश, जहां घनी झाडी है ऐसे प्रदेश तथा जल प्रधान देश इनमें सदा जाडाबुखार आदि अनेक प्रकारके रोगोंका डेरा प-डाही रहता है. ऐसे प्रदेशोंमें यदि हुरहुरके वृक्षोंकी बोवाई की जाय तो उक्त स्थानोंकी दूषित और रोगोत्पादक वायु शुद्ध होती है और तमाम रोग नष्ट होते है. दक्षिण अफ्रिका तथा यूरपके कितनेही देश जो दूषित हवासे होनेवाले अनेक प्रकारके देशव्यापी रोगोंसे उजड गये थे उनमें कुछ शो-धक डॉक्टरोंनें इन वृक्षोंकी खूब बोवाई करवायी. जिसका परिणाम यह हु-आ कि थोडेही दिनोंमें वहां स्वर्गीय वायु संचार करने लगी, तमाम रोग अपना बोरिया बंधना उठाकर भाग गये और वे देश फिरसे आबाद और गुलजार हो गये. जिनके घरोंमें बहुत सर्दी रहती है वे यदि अपने २ मकानोंके आ-सपास १०।१९ हुरहुरके पेड लगावें तो सारी सर्दी और उससे होनेवाले जा-डाबुखार, गठिया आदि रोग बिना किसी दवाके दूर होते है. इस वृक्षमें सर्द और दूषित वायुको खींच लेनेकी अद्भुत शक्ति है.

व्यापारी या आर्थिक लाभकी दृष्टिसेभी हुरहुरके पेडका महत्व कम नहीं है. इसके बीजोंका तेल बहुतही उपयोगी और लाभदायक है. यह तेल घासके रं-गका होता है. यह खानेके लियेभी अच्छा और हितकर है. इस तेलमें हमनें पूरी वगैरह तलकर देखा है. उसमें किसीतरहकी दुर्गंध या तीव्र गंध नहीं होती. केवल इतनाही नहीं वरन और और तेलोंकी तरह हुरहु-रका तेल बरतनमें रखनेसे बरतन हरा नहीं होता. इसमें तली हुई पूरियां

वगैरह पदार्थ देरतक रखनेसे किसी तरह बिगडतेभी नहीं. इसके अतिरि तेलके रंगोंमें, चित्रकारीके काम आनेवाले रंगोंमें जो और और महंगे दाम तेल बरतनेमें आते है उनके एवजमें हुरहुजके सस्ते तेलका बखूबी उपयो हो सकता है. इस तेलसे मोमबत्तियांभी बन सकती है. इसलिये हुरहुज वृक्षोंकी यदि भारतवर्षमें विस्तारपूर्वक खेती की जाय तो 'एक पंथ दो काज या 'आमके आम और गुठलियोंके दाम'के हिसाबसे, इस समय प्लेग, हैजा मलेरिय जैसे भांति भांतिके रोगोंके पंजेमें फंसे हुए भारतवर्षकी वायुभी शुद्ध और नीरोग होगी, और साथही इसके तेलकाभी एक बडा भारी व्यापार चल जानेसे देशका हरसाल लाखों रुपयोंका लाभ होगा. विलायतसे हरसाल लाखोंकी कीमतके चित्रकारीके तेल हिंदुस्थानमें आते हैं. उसकी बचत होगी. परन्तु बडे खेदकी बात है कि हमारे वानौनी देशहितैषियोंका ध्यान इसप्रकारके उपयोगी विषयोंकी तरफ नहीं जाता है. रशियामें कहीं कहीं इस वाणिज्यके लाभकी दृष्टिसे हुरहुजकी खेती बृहद्रूपसे होने लगी है. हुरहुजके फूलोंमेंसे बीज निकाल लेनेके बाद जो अवशिष्ट रहता है, उसे गौ-भैंस वगैरह जानवर बहुत चावसे खाते है. फिर बीजोंका तेल निकाल लेनेपर जो खली रहती है वह भी उनके खानेके काम आती है.

गुण और औषधी प्रयोग—हुरहुज—गरम, अग्निदीपक, आवाजके लिये हित, रसायन, चरपरा, कडवा, कसैला, रेचक, रूक्ष, हलका; और कफ, वायु, रक्तदोष, ज्वर, दमा, खांसी, विस्फोट, कुष्ठ, प्रमेह, अरुचि, योनिशूल, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, पांडु और गुल्म इन रोगोंका नाश करनेवाला है. (१) भूतज्वरपर—हुरहुजकी जड कानमें रखे. (२) शीघ्रप्रसूतीकेलिये—हुरहुजकी जड बालोंसे बांध रखना. (३) बालकोंको माताका दूध न मिलनेके कारण गौ भैंसका दूध पिलानेसे या माताका दूध दूषित होनेसे बच्चोंके पेटमें जो यकृजन्य गोला या एक प्रकारकी प्लीहा बनती है उसपर—हुरहुजके फूलोंका रस दस बूंदतक दूधमें पिलावे. यदि गोला औधा हो तो हुरहुजके सूखे फूलोंका कपडछन चूर्ण, छोटी इलायचीके बराबर छेदवाली नलीमें भरकर उसका

एक सिरा गुदामें डालकर दूसरी तरफसे जोरसे फूंक दे. (४) विच्छूके काटे-र-हुरहुजके पत्तोंका रस नाकमें छोडे और काटे हुए स्थानमें उनका लेप करे. (५) (६) दस्त होनेके लिये—हुरहुजके बीजोंके तेलके बूंद ना-भिके ऊपर छोडे और दस्त बंद करनेके लिये—यही तेल त्रिकास्थि-चूतडोंके ऊपरके अस्थिसंधि-पर लगावे. (७) स्त्रियोंकी कांछ निकलआनेपर—तीन दिनतक हुरहुजके फूलोंका रस हाथोंमें मसलकर गुदद्वारके पास हाथ रखना.

शारिवा. (गोरीसर, गौरिया साऊ, कालीसर, कारियासाऊ.

संस्कृत—(गोरीसर) सारिवा, शारदा, गोपा, गोपवल्ली, प्रतानिका, गोप-कन्या, आस्फोता, लता, काष्टसारिवा, धवलसारिवा, स्फोता, गोपांगना, गोपी, फणिजिह्विका, गौरा, सुगन्धमूला, सुगन्धा, सुगन्धिका, गोपालिका, कराला, अ-हिजिह्वा, कृशोदरी, नागजिह्वा, गोपवधू, गोपिका, भद्रवल्लिका. (कालीसर) कृष्णमूला, कृष्णसारिवा, चन्दनसारिवा, कृष्णा, भद्रा, चन्दनगोपा, कृष्णवल्ली, उत्पलसारिवा, श्यामा, अनन्ता, महाश्यामा, कालिन्दी, महागोपी, कालानुसा-रिणी, चन्दनमूलिका, कृष्णवल्लरी, कालपेषी, सुभद्रा, दीर्घमूला, कलपण्टिका. म. पांदरी व काळी उपळसरी. गु. धोळी उपलसरी, काळी उपलसरी. बं. अन-न्तमूल, श्यामालता, कलवण्टि. क. कारिंवंट, सोगंदे, सुगन्धिबल्ली, नामदेवेरु, कृष्णसारिवा. तै. पलाशगन्धी. म. नान्नारि. तु. कन्यावेरु. औत्कल-गुपापानमूल. गोवा-दुदवाली. इं. Indian Sorsaparilla इंडियन सार्सापरिला. ला. He-midesmus Indicus हेमिडेस्मस इंडिकस.

वर्णन—शारिवाकी वेलें होती हैं. ये पथरीली पहाडी जमीनमें अधिक-तर होती है. कितनेही वैद्य काकमाचीहोंको शारिवा समझकर उसका व्यवहार कर-नेमें बडी भारी भयंकर भूल करते है. उक्त दोनों वनस्पतियें और उनके गुण एकदूसरेसे बिलकुल भिन्न है. बंबई प्रांत, बंगाल, कोरोमांडेल किनारा, हिमालय प्रांतवर्ती प्रदेश इनमें ये वेलें बहुतायतसे होती हैं. त्रावणकोर रि-यासतमें तो बहुतही होती हैं. शारिवा या सरकी दो जातिया हैं. एक म-

फेद और दूसरी काली. शारिवाकी वेल बहुत बारीक, चिकनी और पद्मका-ष्ठकीसी काली–अथ मिश्रित रंगकी होती है. पत्ते आकारमें कनेरके पत्तों जैसे परंतु उनसे पतले, सकडे और नोकीले होते है. उनपर बारीक बारीक सफेद रंगकी लकीरें या छींटे होते हैं. पत्ते ३।४ उंगल लंबे और १ उंगल तक चौडे होते हैं. ये वेलपर एक दूसरेके बराबरमें लगते है. जूनसे आगस्टतक इसपर फूल लगते है. उनका रंग बाहरकी ओरसे फीका और अंदरसे गहरा लाल होता है. इसके उपर बारीक और लंबी फलियें लगती है. उनमें कपास होती है. शारिवाकी जडें टेढी तिरछीं, और गोल होती है. उनका व्यास सामान्यत: $\frac{3}{8}$ से $\frac{5}{8}$ इंचतक होता है. उनकी छाल फटी हुई, गहरे धूसर रंगकी–पद्मकाष्ठकी छालके रंगसे मिलती हुई होती है. और उसके अंदरका काष्ठमय भाग पीले रंगका और कठिन होता है. इसकी हरी जडमें एक खास तरहकी मनोहर सुगंधि होती है और प्राय: उसीके कारणसे इसे सुगन्धा यह नाम दिया गया है. जडका स्वाद मीठा और कुछ कडवासा होता है.

गुण–गोरीसर—ठंडी, मधुर, वीर्यवर्धक, भारी, स्निग्ध, कडवी और खुशबूदार होती है और कुष्ठ, खुजली, ज्वर, शरीरकी दुर्गंधि, अग्निमांद्य, दाह, खांसी, अरुचि, आमदोष, त्रिदोष, विषदोष, रक्तरोग, प्रदर, कफ, अतिसार, प्यास, रक्तपित्त, और बादी इन विकारोंको नष्ट करती है. कालीसर ठंडी, कामोत्तेजक, मधुर और कफनाशक है. शेष सब गुण गोरीसर जैसेही हैं. शारिवामें रक्तशुद्धि करनेका गुण पहले दर्जेका है. मद्रास प्रांतमें रक्तदोष, त्वचाके रोग, अपचन, विस्फोटक वगैरह रोगोंमें सारिवाका सर्व साधारण तौरपर उपयोग किया जाता है. सारिवा एक स्वयंभू वनस्पति है. जंगलोंमें वह बुदबुदर मनों उगती है. और विनादामके मिल सकती है. तिसपरभी हमारे भारतवर्षीय लोग उसका उपयोग न करके महंगे दाम के विलायती माल्सा–सार्सापरिला लेनेके लिये दौडते है. जिननही अंग्रेजी डॉक्टरोंनेभी सारिवाको बहुत असरकारक इस बातका विश्वास दिलाया है कि

जिन बीमारोंको विलायती सार्सापरिलासे लाभ नही हो सका उनको सारिवाके क्वाथसे आराम हो गया. डॉक्टर लोगभी त्वचाके रोग, खुजली, फोडे और जननेन्द्रियके (Venereal diseases) रोगोंपर सारिवाका क्वाथ देते है. पहले पहले सन १८३१ ईसवीमें डॉक्टर आशवर्नरने अंग्रेजी दवाओंके साथ आनमाइशके तौरपर सारिवाका उपयोग करना शुरू किया. परन्तु उससे उनको इसकदर लाभ मालूम हुआ कि तबसे फिर वे अपने अस्पतालमें सदा विलायती सार्सापरिलाके बदलेमें इसीका व्यवहार करने लगे. इसके व्यवहारका विधिभी उन्होंनें बहुत सादा रक्खा था. पांच तोले सारिवाकी जड कुचलकर सवासेर खौलते पानीमें भिगो रखते थे. इससे सदाकी अपेक्षा तिगनी, चौगुनी पेशाब होती है, शरीरसे खूब पसीने छूटते हैं, और बडी तीव्र क्षुधा लगती है. डॉक्टर ओशिंगनेसी लिखते हैं कि उनके अस्पतालके बीमारभी शारिवाके इन गुणोंसे इसकदर परिचित हो गये थे कि वे स्वयं इस दवाको मांग लेते थे और बडे प्यारसे पीते थे. शारिवाकी जडका चूर्ण शहतमें चाटनेसे गठिया तथा फोडे आराम होते हैं. मद्रासप्रांतके तामील लोग सब प्रकारके मूत्ररोगोंमें शारिवाकी जडें गौके दूधमें पीसकर पिलाते है और रक्तशुद्धि तथा पित्तविकार दूर करनेके लिये जीरेके साथ देते है. अमेरिकन सार्सापरिलाकी अपेक्षाभी शारिवामें अधिक गुण हैं. इस बातको उस देशके रसायनशास्त्रज्ञोंनेभी स्वीकार किया है. गोरीसरकी अपेक्षा कालीसरकी जडें कुछ मोटी होती हैं और उनमें गुणभी अधिक कालतक रहता है. दोनों प्रकारकी शारिवाका क्वाथ मिसरी डालकर पीना. बालकोंकी कमजोरी, पुराना गठिया, विस्फोटक और चमडीके रोग इनपर शारिवाका किसी प्रकारसे व्यवहार करनेसे लाभ होता है. सबसे सुगम विधि यह है कि २॥ तोले जडें कुचलकर पचीस तोले खौलते पानीमें डालकर ऊपरसे ढकन लगादे. फिर यह पानी दिनभरमें तीन चार बार मिलकर दस पंदरह तोले तक पिलावे. यह पानी गुन-

जगदर्शक प्रेस, पुणे

वनौषधि विज्ञान ।

[६] **दन्तरोगपर**—शारिवाके पत्ते और खिरैटी के पत्ते समभाग लेकर महीन पीस कर उसकी गोली बयान दान्तोमें रखनेसे दर्द और कृमि नष्ट होकर दांत दृढ़ होते हैं. [७] **पित्तज्वर पर**—शारिवा और कमलकन्द इन दोनों का क्वाथ ठण्डा होनेपर मिसरी डाल कर पिये, [८] **सब प्रकार के विषों पर**—शारिवाकी जड़ें पीसकर पानी मे घोलकर पिए. [९] **सिर दर्द पर**—शारिवाकी जड़ पानीमे घिस कर लेप लगाना. [१०] **पेटके दर्द पर** शारिवाकी जड़ पानीमें घिस कर पीना. (११) **शारिवा का शरबत**—शारिवाकी जड़ें १० तोले, खाड १॥ सेर और पानी १। सेर लेना, प्रथम पानी खौला कर उसमे चार घण्टे तक शारिवाकी जड़ें कूटकर भिगो रखना, उसके बाद पानी छान लेना और खाड डाल कर धीमी आचपर औटाना।

अलसी (तिसी, भसीना)

——(*)——

संस्कृत-अनसी, पिच्छला, देवी, मदगन्धा, मदोत्कटा, उमा, क्षुमा, हेमवती, सुनीला, नीलपुष्पिका, रुद्रपत्नी, रुद्र-नीला, मसृणा, सुवल्कला, चेलु, क्षौमी, पार्वती, चणका, तैलोत्तमा, **मराठी**-अलशी, जवस, **गु.** अलशी. **बं.** तिसी,मसीना **क.** अगसि, अतसिगिड़ **तै.** अलशी, **ता.** अलशी विराई, **काश्मीर**-फेउन,अलिश, **काशगार**-जिघिर, **तुर्की**-जिगर **फा.** तुख्मे कतान, **आ.** बजरुल कतान,**इ.** Flax plant फ्लेक्स प्लॅंट, Linum Usitatissimum लिनम युसिटेटिसिमम,

वर्णन-अलसीका पौधा १॥-२ फूट ऊंचा होता है, यह सीधा बढ़ता है और नाजुक होता है, इसपर खड़ी किनारेके सकरे, लम्बे पत्ते ऊपर नीचे लगते हैं, और फूल नीले रङ्गके घण्टाकृति होते हैं, इतर धान्यके सदृश अलसीकी भी बोवाई करनी पड़ती है, इसपर गोल फल लगते हैं, प्रत्येक फलमें दस दस खाने होते हैं और हरेक खानेमें एक एक चमकदार बीज होता है, इसीको अलसी कहते हैं, संस्कृतमें जिसे 'शाण' कहते हैं यह इसी पौधेसे उत्पन्न होता है, कुछ अर्वाचीन शोधकोंने, इस वृक्षका असली उत्पत्तिस्थान मिसर और कुछ लोगोंने यूरपके अन्य देश बतलाये हैं और वहांसे यह हिन्दुस्थान में किसी समय लाया गया इस प्रकार अपना मन स्थिर किया है, परन्तु यह मत सर्वथा निराधार है; चरक-सुश्रुतादि प्राचीन वैद्यक ग्रन्थोंमें उमा, अतसी, क्षौम इत्यादि नामोंसे अनेक स्थलोंमें अलसीका उल्लेख पाया जाता है और उसके उपयोगभी वहां आज कल जैसे ही कहे गये हैं, उनसेभी प्राचीन ग्रंथोंमें अर्थात मनु-याज्ञवल्क्यादिकी स्मृतियोंमें उपनयन प्रकरणमें क्षत्रियोंके लिये क्षौमवस्त्र यानी अलसीके डोरोंके वस्त्र धारण करनेकी विधि बतलायी गयी है, महाभारत और रामायणमें भी क्षौम वस्त्रों का वारम्वार उल्लेख पाया जाता है, (चीनमें 'चुना' नाम का एक प्रकारका वस्त्र होता है यह क्षौमवस्त्र जैसा ही होता है,) "आईन-इ-अकबरीमें", ब्रह्मचारियोंके वेष वर्णनमें अलसीके डोरोंके वस्त्र की टोपी का निर्देश किया गया है, सुश्रुत संहिताके सूत्रस्थानके २५ वें अध्यायमें मेखली बनाने के लिये अलसीके दोरों ही का उपयोग करनेके लिये कहा गया है, (सशण क्षौम सूत्राभ्यां स्नाय्वा वालेन वा (पुनः)

इन सब प्रमाणोंसे यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है कि अलसीकी उपज भारतवर्षमें बहुत प्राचीनकालसे होती है और उसके तन्तुओंसे वस्त्र बनानेकी परिपाटी भी उस के साथ ही साथ चली आती है, परन्तु इधर लग भग दो सौ बरससे अलसीके डोरे निकालने की प्रथा लुप्त हो गई है।

अलसीका दवामें अनेक प्रकारसे उपयोग होता है, इसके सिवाय व्यापार, शिल्प, कला आदिकी दृष्टिसे भी यह भारतवर्ष के लिये बहुत महत्वकी वस्तु है, तेलके रङ्ग, छापनेकी स्याही, बेल बूटेदार रङ्गीन फर्श, बनावटी इंडिया रबर तेलकी वार्निश, तथा नरम साबुन बनानेके काममें इसके तेलका बहुत उपयोग होता है, मशीनोंमें भी इस तेलको बहुत बरतते हैं, 'बेल तेल' इस प्रसिद्ध नामसे जो विलायती तेल बाजारमें बिकता है वह अलसीका ही उबला हुआ तेल (Boiled Oil) होता है, इङ्गलण्डमें अलसी घोड़ोंको खिलाते हैं, अलसी के पौधेकी डंडियोंसे जो डोरे निकलते हैं उनका बहुत उमदह कपड़ा बनता है, 'लिनन' और 'केम्ब्रिज' नामके विलायती वस्त्र अलसीके तन्तुओंसे ही बनाते हैं, लिननसे भी केम्ब्रज बहुत महीन और बढ़िया होता है ये दोनों प्रकारके वस्त्र इङ्गलेण्डमें बनते हैं, अलसीके सूखे डंठे कागज बनानेके काममें आते है, इसकी खली दूध देने वाली गौ भैंस को खिलानेसे वह बहुत दिन तक दूध देती है और उनके दूध से मक्खनभी बहुत उम्दह निकलता है, इस प्रकार इस वृक्षसे अनेक तरहके लाभ दायक व्यवसाय चल सकते हैं, परन्तु उद्योग वृद्धि और देशोन्नतिकी बड़ी बड़ी डींगें हांकने वाले हमारे देशहितैषियोंका ध्यान ऐसी बातोंकी ओर बिलकुल नहीं जाता यह भारत वर्षका दुर्दैव ही समझना चाहिये, उन्हें

तो "यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवं परिसेवते" इस न्यायसे सर्वथा पराये देशों पर निर्भर रहने वाले शिल्प, कला, व्यवसाय आदि सीखनेके लिये हजारों रुपये खराव करके इंग्लेण्ड जर्मनी, अमेरिका प्रभृति देशोंमें जानेका चाव पड़ा है, हिन्दुस्तानमेंसे द्वीपान्तरोंमें और विशेषतः इङ्गलेण्ड और फ्रांसमें अलसी बहुत जाती है, इधर कुछ दिनोंसे हालेण्ड में भी जाने लगी है, १८९३–९४ इस एक सालमें कुल साढ़े सात करोड़ रुपयेकी अलसी हिन्दुस्थानसे बाहर चली गई, हिन्दुस्थानके लोग अलसीका तेल वगैरह निकालने के विषय में बिलकुल बेपरवाह होनेसे यहां से भेजी हुई अलसीके तेल वार्निश रंग वगैरह पदार्थ विलायतमें बन कर उन पर जाने आनेका किराया चढ़ कर फिर खूब महंगे बिकनेके लिये वे हिन्दुस्तान हीमें आते हैं हिन्दुस्तानमें अलसीकी बोवाईकी जगहसे कागज बनानेकी कलें तथा कारखाने बहुत दूर होनेसे अलसीके सूखे डंठे कागज बनाने के काममें नहीं आते, क्यों कि उन्हें दूर ले जानेकी गुंजाइश नहीं होती, हिन्दुस्तानमें अलसीकी बोवाई स्वतंत्र रूपसे बहुत कम करते हैं प्रायः सरसों या राईके साथ उसको बोते हैं, इस कारण साफ अलसी नहीं मिलती, उसमें सरसों और राईकी मिलवट होनेसे तेल अच्छा नहीं निकलता और तेल से बनाने वाले वार्निश, रंग वगैरह पदार्थ भी अच्छे नहीं बनते पहले हिन्दुस्तानसे तेल भी विलायत जाता था परन्तु वह घटिया निकलने लगा जिससे वहां उसकी बिक्री कम हो गई और भावभी घट गया, इस, लिये फिर तेल भेजना बंद कर दिया गया, अब केवल अलसी यानी बीज जाता है, यदि यहां तेल निकाला जाता तो उसकी खली, जानवरोंके खाने

के काममें आती और पौधे खेतोंमें खात डालने या कागज बनानेके काममें आते, बिलायतको बीज जानेसे इन लाभों से हम वञ्चित होते हैं, अलसीके पौधोंसे डोरे निकाल कर उनके अनेक प्रकारके वस्त्र बनानेका भी एक अच्छा व्यवसाय चल सकता है, हिन्दुस्तानमें कितने ही स्थानोंके मनुष्य अलसीकी खली साफ करके भक्ष्य पदार्थोंकी भांति खाते हैं अलसी भूंजकर उसकी चटनी बनाते हैं उसके कच्चे फलोंकी चटनी बहुत मजेदार होती है ये फल अचारमें भी डालते हैं, तेल और बीजभी इसका कहीं कहीं खाने में उपयोग होता है.

अलसीकी मुख्य दो जातियाँ हैं, एक सफेद और दूसरी लाल, लाल जातिमें फिर छोटी और बड़ी दो भेद हैं, सफेद बीजोंमेंसे फी सदी ३५.१ इस हिसाबसे तेल निकलता है, बड़ी जातिके लाल बीजोंमेंसे फी सदी ३१.२ और छोटे बीजोंमें से २९.६ इस प्रमाणसे तेल निकलता है, औसत प्रमाणसे फी सदी ३० यानी सौ मन बीज का ३० मन तेल निकलता है,

गुण-अलसी मधुर, स्निग्ध, कडुवी, बल कर, पाककालमें चरपरी, भारी, वातकर, पित्तहर, कफहर, उष्ण और दृष्टि शुक्र रोग, पीठका दर्द तथा सूजन इनका नाश करने वाली है इसके पत्तोंका शाक बादी, खांसी, दमा और कफ को दूर करता है,

औषधी प्रयोग-(१) रंगका काम करने वाले लोगोंके, मुर्दा रंगका काम करते समय, उसका कुछ अंश पेटमें जाकर, एक खास किसमका दर्द पेटमें होने लगता है उस पर अलसीका तेल बहुत ही लाभ दायक है, यह गालेस्की नामक एक रशियन डाक्टरका अनुभव है, (२) इन दिनों

यूरपमें कहीं कहीं मल मार्ग का शोथ और कफाशयके ऊपर के भागकी अंदेरकी सूजन हटानेके लिये पट्टा की भांति अलसीका फांट बना कर देते हैं (३) बवासीरके मस्से फूल कर उनसे बहुत तकलीफ होती हो तो दिनमें दो बार ५।५ तोले अलसी का तेल पीनेसे खुल कर दस्त होते हैं और मस्से हलके पड़ते हैं (४) सूजाक, पेशाब की जलन और मूत्रमार्गके हरेक रोग पर अलसीका क्वाथ या खांड मिलाया हुआ अलसी का चूर्ण देना अथवा अलसी और मुलहटी कुचल कर चार घंटे तक खौलते हुए पानी में डाल रखे, ऊपर ढकना देवे, फिर यह पानी छान कर दिन भर थोड़ा थोड़ा करके पिलावे, (५) छाती में बलगम जम गया हो या फेफड़े सूज गये हों तो अलसी का चूर्ण तावे पर भून कर या उसका पुल्टिस बना कर वह गरम गरम रहते हुए उससे सेंके, (६) पेट में पेचिश-मरोड़ होती हो तो अलसीका क्वाथ पिलाना, (७) पेशाबमेंसे खून गिरता हो या गर्भिणी स्त्रीको पहिले महीने में वांति और चक्कर आती हो तो अलसीके क्वाथसे लाभ होता है, (८) नींद न आती हो तो-अलसीका और एरंडीका तेल सम भाग मिला कर कासेकी थालीमें कांसे की कटोरीसे घोंट कर उसका आंखोंमें अंजन करने से तत्काल नींद आती है, (९) बद फोड़ा वगैरह पकनेके लिये अलसीके चूर्णमें दूध या पानी डाल कर और थोड़ी हलदी मिला कर उसको अच्छी तरह पकावे और जितना सहा जाय उतना गरम फोड़े पर रख कर ऊपरसे (तांबूल) पान रख कपड़ा बांध दे, इसे पुल्टिस कहते हैं पुल्टिस बनानेका इस से भी अच्छा तरीका यह है कि अलसीके चूर्णमें एक दम खौलता हुआ पानी डाल कर उसको खूब हिलावे ठंडे पानी

पुलटीस अच्छा नहीं होता, (१०) अग्निसे जले हुए
?—अलसीका तेल और चूनेके ऊपरका नितरा हुआ पानी
ला कर जखम पर लगाना,

विलायती "सालिड आइल" की जगह अलसी के तेलका
योग हो सकता है, "सालिड आंइल" की तरह अलसीके
त में मरहम भी बन सकता है, सोडा और पोट्याश मिलाने
इसका साबुनभी बन सक्ता है यूनानी हकीमोंके मतमें
लसी उदर के लिये हानि कारक है, इस लिये वे इसके साथ
हत और धनिया खानेको कहते हैं, अलसीका तेल दस्ता-
र है, अलसीकी एक जाति महाराष्ट्रकी पश्चिम पहाड़ी पर
ौर कलकत्तेकी तरफ होती है उसे "उद्री" कहते हैं, यह
१० मंत्रीकी राय है,

विषखपरा (सांठ, गदहपूर्णा)

संस्कृत- (सफेद) पुनर्नवा, श्वेतमूल, कठिल्ल, चिरा-
टेका, पृथिचरा, श्वेतपुनर्नवा, सितवर्षाभू, वर्षाङ्गी, वर्षाही,
वेशाख, शशिवाटिका, पृथ्वी, घनपत्र, कठिल्लक, शोथघ्नी,
दीर्घपत्रिका, (लाल) रक्तपुनर्नवा, रक्त पत्रिका, रक्तकाण्डा
वर्षकेतु वर्षाभू, प्रावृषायणी, कठिल्लक, रक्तपुष्पा, शिरहाटिका,
वर्षकेतु, क्रूर, मण्डलपत्रिका, लोहिता, वैशाखी, रक्तवर्षाभू,
शोफघ्नी, रक्तपुष्पिका, विकस्वरा, विषघ्नी, प्रावृषेण्या, सारिणी,
वर्षाभव, शोणपत्र, भौम, पुनर्भव, नव, नव्य, (नीला) नील
पुनर्नवा, नीला; श्यामा, कृष्णाख्या, नीलिनी, नीलवर्षाभू,
मराठी, पुनर्नवा, घेटुळी, **गु**,(१) धोळी, साटोडी (२) राती
साटोडी, **बं**, (१) श्वेतपुण्या (२) गादापुण्या, **क**, (१)

थिलेथेरुइकिलु, सनाहिका, (२) केप वेल्लइकिलु, तै, तेक्का अटातामामिठी, अतिकामानूदी, ता, मुक्किराटे, मलायलम, तामिलाभा, तालुतामा, अ, हंदकूकी, इ, Spreading hogweed स्प्रेडिंग हागवीड, ला, Boerhavia Diffusa बोअरहावियां डिफ्यूजा, B Procumbens बी, प्रोकबेम्स, B Diandra बी, डायंड्रा,

वर्णन, विषखपरेकी वेलें पृथ्वी पर फैली हुई होती हैं, ये वेलें हिन्दुस्तानमें सब जगह कूड़े कर कटके ढेरों पर और विशेषतः ककरीली या रेतीली भूमिमें अधिक होती हैं यह वेल गुलवासके जातिकी यानी Nyctaginacea "नायक्टाजिनेशिया" वद्भिज्जवर्गकी है, इसकी सफेद, लाल और नीली इस प्रकार तीन जातियां हैं, उनमें नीली सांठ बहुत कम मिलती हैं, शेष दो जातियोंमें भी सफेदकी अपेक्षा लाल जातिका विस्तार अधिक होता है इसकी पत्तियां छोटी बड़ी, मोटी, अधिकांश गोल घनी और आकारमें चौलाईकी पत्तियों के समान ही हैं सफेद पुनर्नवाके पत्तोंके पृष्ठ भाग पर लाल किनार होती है लाल पुनर्नवा की पत्तियों पर वह नहीं होती सफेद पुनर्नवा के फूल सफेद होते हैं और लाल के गुलाबी-लाल, फूल छोटे होते हैं और उनका पुष्पकोश घंटाकार होता है, सफेद पुनर्नवाको विषखपरा और लालको सांठ या गदह पुरैना कहते हैं, वसु नामक दूसरी एक वनस्पति है जिसकी वेल आपाततः देखने वालों को पुनर्नवा के समान प्रतीत होती है जिससे बहुत से अनभिज्ञ वैद्य भी वसुको ही पुनर्नवा मान कर उसका उपयोग करते हैं वसुभी पुनर्नवाके समान सफेद और लाल दो प्रकारकी है इससे लोगोंका भ्रम पुष्ट होता है वसुके पत्तोंकी अपेक्षा विषखपरेके पत्ते कुछ मोटे होते हैं, वास्तव में दोनों वनस्पतियाँ भिन्न हैं वर्षा के

दिनोंमें पुनर्नवा बड़े ज़ोर से बढ़ता है इसीसे इसको वर्षाभू, वर्षाभव, प्रावृषायणी इत्यादि नाम दिये गये हैं. शोफघ्नी, सारिणी ये नाम उसके शरीरस्थ अन्तर्बाह्य शोथ दूर करनेके तथा सारक गुणके द्योतक हैं। रसायन शास्त्रीोनें सिद्धान्त किया है कि पुनर्नवा का औषधोपयोगी अंश उसकी जड़में होता है। ई. स. १८८९ में मिस्टर स्टीफनसन नामक रसायन शास्त्रीने इसकी जड़ का पृथक्करण किया था जिसका परिणाम उन्होंने यह प्रकट किया कि इसमें एक अलकलॉइड यानी क्षार प्रकृतिका सत्व एक शर्करासदृश और एक राल सदृश द्रव्य होते हैं. क्षार धर्मी द्रव्यक प्रमाणका उल्लेख उसने नहीं किया है. परन्तु टार्ट्रेट रूपसे उसे अलग निकाल कर उसने वह खरगोशके पेटकी त्वचामें डाला १।२० रत्ती खूनमें दाखल होने पर कोई डेढ घंटे में खरगोश की पेशाब तिगुनी बढ गयी. इससे यह बात सिद्ध हो गयी कि Boerhaavine बोअरहाविन सत्त पेशाब बढानेके लिये बहुत उपयोगी है. सन् १८९२ ईस्वीमें राजपूतानेमें पाचभद्रा अस्पतालके डाक्टरने विषखपरे के सर्वांगका क्वाथ काली मिर्चका चूर्ण डाल कर दस बीमारोंको पाँच पांच तोले प्रमाणसे पिलाया उनमेंसे आठ बीमारोंकी पेशाब बढ गयी और उन्हें बहुत पसीना आया. सीलोन में डाक्टर जयसिंहने भी इसकी मूत्ररेचकता को अच्छी तरह प्रशंसा लिया है. इसकी मूत्ररेचकता में यह विशेष गुण है कि यह बहुत खुल कर रेचक है. फ्रेंचलोक आटलीस टापूमें इसे सूज़ाक पर देते हैं. उदर रोग पर भी यह बहुत गुणकारी है, पेशाबके द्वारा सारा पानी निकाल कर उदर रोग मिटाता है. बंबई की तरफ इसे "खापरी" कहते हैं. वहां वाले इसकी शाक बहुत खाते हैं उससे दस्त खुल कर

होता है. परन्तु शाकके काममें केवल सफेद पुनर्नवा ही आता है. लाल पुनर्नवा बहुत तीक्ष्ण होनेसे उसकी शाक नहीं खायी जाती.

गुण–विपखपरा (श्वेत पुनर्नवा) उष्ण, अग्निदीपक, रेचक, कडुआ और कफ, विष, खांसी, हृद्रोग, शूल, रक्तविकार, पांडुरोग, सूजन बवासीर, व्रण और वायु इनका नाश करने वाला है. **सांठ** (लाल) कडुवी, सारक, पाक कालमें चरपरी तथा शोथ, रक्तप्रदर, पांडु और पित्त इनकी नाशक है. **नील पुनर्नवा**–कडुवी, चरपरी, उष्ण, रसायन और हृद्रोग, पांडु सूजन, श्वास, वात और कफ इनका नाशक है. **विपखपरे की शाक**–अत्यंत रूक्ष, और कफ, वात, अग्निमांद्य, गुल्म, प्लीहा और शूल इनकी नाशक है.

औषधी प्रयोग (१) आंख की फूली पर— सफेद पुनर्नवाकी जड़ घीमें पीस कर आंखोंमें आंजनसे फूली दूर होती है. (२) **आंखोंकी खुजली और अश्रुस्राव पर—** सफेद पुनर्नवाकी जड़ दूधमें या भांगरे के रसके साथ घिस कर अंजन करनेसे खुजली दूर होती है और शहतके साथ अंजन करनेसे स्राव बंद होता है. (३) **पटल दूर होनेके लिये**–सफेद पुनर्नवाकी जड़ पानीमें घिस कर अंजन करना. (४) **रतौंधे पर**–सफेद पुनर्नवेकी जड़ कांजीमें घिस कर अंजन करना अथवा गायके गोवर के रसमें इसकी जड़ और पीपल घिस कर अंजन करना. (५) **सूजन पर**–विपखपरा, देवदार, सोंठ और खस, इनका क्वाथ गोमूत्र मिला कर पिलाना. (६) **सर्वांगशोथ, उदर,**

पांडु, स्थूलत्व और कफ इन पर-पुनर्नवा, नीमकी छाल, पटोल, सोंठ, कटुकी, दारुहलदी, गिलोय और छोटी हरड इनका क्वाथ पिलाना. (७) **सर्वांग शोथ पर**-चिरायता और सोंठका कल्क मिला कर पुनर्नवाका क्राथ पिलाना. (८) **पुनर्नवा तैल**-४०० तोले पुनर्नवाकी जड़ों का एक द्रोण (२०४८ तोले) पानीमें चौथाई क्राथ करना. उसमें सोंठ, मिर्च, पीपल, त्रिफला, काकड़ाशिङ्गी, धनियां, कायफल, कचूर, देवदार, प्रियंगु, रेणुका, कूठ, विषखपरा, अजवाइन, काला जीरा, इलाची, दारचीनी, पद्माक, तमालपत्र और नाग केशर इनमें प्रत्येक औषधोंका एक एक तोला कल्क मिला कर उसमें एक सेर तेल सिद्ध करना, इससे कामला, पांडुरोग, हलीमक, श्वास, तिल्ली, उदर, जीर्णज्वर और मलरोग आराम होते हैं. (९) **पुनर्नवादिघृत**-पुनर्नवा, चीतर, देवदार, पीपल, पीपरामूल, चव्य, सोंठ, यवक्षार और हरड इस प्रत्येक औषध का ८ तोले कल्क डाल कर शालिपर्ण्यादि दश मूलके क्वाथमें ३२ तोले घृत बनाना. यह घृत शोथके लिये बहुत ही उत्तम है.

सेमल (२)

संस्कृत-शाल्मलि, शल्मलि, चिरजीवी, पिच्छिल, रक्तपुष्पक, कुक्कुटी, तूलवृत्त, मोचाख्य, कंटकद्रुम, रक्तोत्पल, रम्यपुष्प, बहुवीर्य, यमद्रुम, दीर्घद्रुम, स्थूलफल, दीर्घायु, पिच्छिला, तूलिनी, मोचा, कंटकाढ्या, सुपूरिणी, बहुवीर्या, तूलफला, निस्सारा, दीर्घपादपा, दुरारोहा, रम्यपुष्पा, रोचना, यमद्रुमा, स्थिरायु, स्थिर जीविका, कुंकभा, स्थूल जीविका, **म.** सांवर, काँटे सांवर, **गु.** शमलो **बं.** शिमुल **क.** बूरलएलय, मचलवदमर

वृक्ष पर पत्ते बिलकुल नहीं होते यह हम ऊपर कह ही चुके हैं और जब बड़े बड़े भड़कदार लाल फूलों होसे वृक्ष भर जाता है तब दूरसे उसका दृश्य बहुत सुन्दर और नयनाभिराम दिखाई देता है. फल लम्बे होते हैं. वे पकनेपर निकाल लिये जाते हैं और फोड़ कर सुखाये जाते हैं. फिर उसके भीतरसे रुई निकाल लेते हैं. यह रुई रेशमकी नाई बहुत ही मृदु होती है. इसमें काले बीज होते हैं. इसे धुननेकी जरूरत नहीं होती. हिन्दुस्थानमें इसका उपयोग केवल अमीर लोग गद्दी, तकिये, सिराने, लिहाफ वगैरह बनानेमें करते हैं. इसका सूत या कपड़ा नही बनता. हमने सुना है कि हालबमें इस रुईसे एक प्रकारका कपड़ा बनाते हैं. सेमलकी लकड़ी बड़ी कठिन होती है. वह पानीमें जल्दी नहीं सड़ती. इससे इसके पेड़की लकड़ी की छोटी छोटी नावें बनाते हैं. बहुत बड़ा और पुराना वृक्ष हो तो उसके पेड़ की हज़ार हज़ार मन माल लादने लायक नावें बनती हैं. सेमलके पेड़में से कुछ कालिमा लिये लाल रङ्गका गूंद निकलता है उसे मोचरस कहते हैं. यह वृक्ष दो सौ–तीन सौ साल तक जीता रहता है. इसीसे इसे दीर्घायु, चिरजीविका, स्थिरायु आदि अन्वर्थक नाम दिये गये हैं. रक्त पुष्पक, तूलवृक्ष, दीर्घद्रुम, दुरारोह, रम्यपुष्पा आदि इसके प्रायः नाम अन्वर्थक हैं. फूललाल और रमणीय होते है इससे रक्तपुष्प और रम्यपुष्पा ये नाम दिये. पेड़पर कांटे होजानेसे उसके ऊपर चढ़नेमें बहुत कठिनाई होती है इससे दुरारोहा नाम मिला. बहुत ऊंचा होता है इससे दीर्घद्रुम और इसके फलों से रुई निकलती है इससे तूल वृक्ष और तूलफला ये संज्ञाएँ दी गयीं. सेमल की जड़, छाल गोंद और फूल इनका औषधी में व्यवहार किया जाता है.

येलयट्टा, **ते.** रूगचेट्टू, बुरूगा, **ता.** इलावु, शानमली, **मला.** मम्मिनवु, **औ.** बोबूरी, **ब्रह्मी**—लेटपान, **इं०** Silkcotton tree सिल्ककॉटन ट्री, **ला.** Bombax Malabaricum बांबेक्स मलाबारिकम. **मोचरस**—शाल्मलिनिर्यास, पिच्छ, मोच, मोचसार, शाल्मलिवेष्टक, मोचस्राव, सुरस, पिच्छिलसार, मोचनिर्यास, मोचक, वेश्मरस, शीलमल, वेष्टक, **म.** मोचरस, सांवरीचा डिंक, **गु.** शेमलानोगुंद, **हिन्दी**—सेमर का गोंद, मोचरस, **बं.** शिमूलेरआटा **क.** दूरल अंटुन्याया.

वर्णन—सेमलका वृक्ष भारतवर्षमें सर्वत्र होता है, यह एक प्रचण्डवृक्ष है, यह लगभग सौ फूट तक ऊंचा होता है, सीधा बढ़ता है, इसका पेड़ भी बहुत मोटा होता है, डालियां पेड़पर कुछ कुछ अन्तर छोड़कर एकही जगहसे चौगिर्द निकलती हैं जिससे वृक्ष छाते के डौल का बहुत खूबसूरत दिखाई देता है, इसके पेड़पर बड़े बड़े कांटे होते हैं, इसके पत्ते किसी कदर लम्बवर्तुलाकार बर्छीनुमा होते हैं, उनके डण्ठल लम्बे होते हैं, चैत्र महीनेमें इस वृक्षके सारे पत्ते झड़ जाते हैं और उसी समय फूल लगते हैं, वैशाखमें फल लगते हैं, कहीं कहीं कार्त्तिक, मार्गशीर्ष में फूल लगते हैं और चैत्र के लगभग फल लगते हैं, फूल तीन प्रकार के होते हैं, लाल, सफेद और पीले, सफेद फूलों के वृक्ष बहुत कम होते हैं, पीले फूलोंके वृक्ष उससे भी विरलतर हैं, हमारे एक वानस्पति शास्त्रज्ञ पुराने मित्र पीले वृक्षोंका वर्णन किया करते हैं, परन्तु हमारे देखनेमें ये वृक्ष अभीतक इसप्रदेश में नहीं आये हैं, लाल और सफेद जातिके वृक्ष प्रसिद्ध हैं, उनमें भी लाल फूलोंके वृक्ष सर्वत्र अधिकता से होते हैं, जिस समय फूल लगते हैं उस समय

वृक्ष पर पत्ते बिलकुल नहीं होते यह हम ऊपर कही चुके हैं और जब बड़े बड़े भड़कदार लाल फूलों हीसे वृक्ष भर जाता है तब दूरसे उसका दृश्य बहुत सुन्दर और नयनाभिराम दिखाई देता है. फल लम्बे होते हैं. वे पकनेपर निकाल लिये जाते हैं और फोड़ कर सुखाये जाते हैं. फिर उसके भीतरसे रुई निकाल लेते हैं. यह रुई रेशमकी नाई बहुत ही मृदु होती है. इसमें काले बीज होते हैं. इसे धुननेकी जरूरत नहीं होती. हिन्दुस्थानमें इसका उपयोग केवल अमीर लोग गद्दी, तकिये, सिराने, लिहाफ वगैरह बनानेमें करते हैं. इसका सूत या कपड़ा नहीं बनता. हमने सुना है कि हालंडमें इस रुईसे एक प्रकारका कपड़ा बनाते हैं. सेमलकी लकड़ी बड़ी कठिन होती है. वह पानीमें जल्दी नहीं सड़ती. इससे इसके पेड़की लकड़ी की छोटी छोटी नावें बनाते हैं. बहुत बड़ा और पुराना वृक्ष हो तो उसके पेड़ की हज़ार हज़ार मन माल लादने लायक नावें बनती हैं. सेमलके पेड़में से कुछ कालिमा लिये लाल रङ्गका गूंद निकलता है उसे मोचरस कहते हैं. यह वृक्ष दो सौ-तीन सौ साल तक जीता रहता है. इसीसे इसे दीर्घायु, चिरजीविका, स्थिरायु आदि अन्वर्थक नाम दिये गये हैं. रक्त पुष्पक, तूलवृक्ष, दीर्घद्रुम, दुरारोह, रम्यपुष्पा आदि इसके प्रायः नाम अन्वर्थक हैं. फूललाल और रमणीय होते हैं इससे रक्तपुष्प और रम्यपुष्पा ये नाम दिये. पेड़पर कांटे होजानेसे उसके ऊपर चढ़नेमें बहुत कठिनाई होती है इससे दुरारोहा नाम मिला. बहुत ऊंचा होता है इससे दीर्घद्रुम और इसके फलों से रुई निकलती है इससे तूल वृक्ष और तूलफला ये संज्ञाएँ दी गयीं. सेमल की जड़, छाल गोंद और फूल इनका औषधी में व्यवहार किया जाता है.

गोंद यानी मोचरस की मात्रा बच्चोंको बीससे चालीस ग्रेन तक देना उचित है, बड़ी उमरके मनुष्यों को ३ । ४ माशे देना चाहिये ।

गुण–सेमल मधुर, वृष्य, बलकर, कसैली, ठण्डी, पिच्छल, हलकी, स्निग्ध, स्वादु, रसादिधातुवर्धक, वीर्यवर्धक, कफवर्धक और रक्तपित्त, पित्त तथा रक्तदोष इनका नाश करनेवाली है. इसकी **छाल का रस**–स्तम्भक, कपैला, और कफनाशक है. **फूल**–शीत, कड़वे, भारी, स्वादु, कपैला, बादी, रूक्ष और कफ, पित्त तथा रक्तदोष इनको दूर करने वाले हैं। **फलके** गुण भी इसके जैसे ही हैं **कन्द**–मधुर, शीतल, मलस्तम्भक और सूजन, दाह, पित्त तथा सन्ताप इनको दूर करनेवाला है **कूटशालाम्ली**–(सेंमलका एक भेद) कड़वी, चरपरी, दस्तावर, गरम और कफ, वायु, तिल्ली, गुल्म, यकृत, विषदोष, भूतबाधा, मलस्तम्भ, भेद, रक्तदोष और शूल इन रोगोंको नष्ट करने वाली है **मोचरस**–कपैला, स्तम्भक, बलकर, पुष्टिकारक, वीर्यवर्धक, कान्तिवर्धक, बुद्धिवर्धक, शीतल, आयुरक्षक, वृष्य, गुरु, स्वादु, रसायन, स्निग्ध, कफकर, गर्भस्थापक, वातनाशक, तथा अतिसार, प्रवाहिका, रक्तदोष, पित्त, दाह, आमातिसार, रक्तातिसार, पक्वातिसार, योनिदोष, व्रण, विषदोष और वेदना, इनको नष्ट करने वाला है

औषधी प्रयोग (१) प्रदरपर–सेमलके फूलोंकी शाक सेंधा निमक डालकर और घीमें छोंककर बनाना इसको खाने से स्त्रियों का कष्ट साध्य प्रदर, रक्तपित्त और कफ ये विकार दूर होते हैं. **(२) प्रदर पर दूसरा प्रयोग**–सेमल की छलका अथवा कांटों का चूर्ण दूध और चीनी में

घोलकर पीना (३) **मूत्र कृच्छ्रपर**—सेमलकी छालका चूर्ण चीनी मिलाकर फांकना और ऊपरसे गरम पानी पीना (४) **बिच्छूके काटे पर**—पुष्यार्क नक्षत्र योगपर, अपनी छाया वृक्षपर न पड़े इस तरह खड़े रह कर उत्तरकी तरफकी सफेद सेमलकी जड़ निकाल लाना और जिस जगह बिच्छूने काटा हो उस जगहसे नीचेकी तरफ वह जड़ तीन वार उतारना और जरा घिस कर दंशकी जगह पर लगाना (५) **उपदंश पर** (आतशकपर) छोटेसे सफेद सेमलके वृक्षकी जड़ खोद कर उसका कन्द निकाल लेना और उसे पीस कर सुखाना फिर उसको कूटकर चूर्ण करना, हर रोज सुबह शाम सफेद सेमलकी छाल गौके दूधमें घिसकर उसमें कन्दका छ माशे चूर्ण और एक तोला मिश्री मिलाकर वह पीना. इस प्रकार २१ दिन तक यह औषध लेना और पथ्यसे रहना इससे उपदंशजनित सम्पूर्ण विकार दूर होते हैं. (६) **वीर्य पुष्टिके लिये**—मोचरसका चूर्ण छ माशे और मिश्री ४ तोले गौके पक्के पावभर दूधमें मिला कर पीना। (७) **दूसरा प्रयोग**—सेमलकी हरी जड़ ४ तोले कुचल कर रातको पावभर गौके दूध में भिगो देना और दूसरे दिन सुबह उसको अच्छी तरह मींज कर दूध छान लेना और उसमें एक तोला मिश्री डाल कर पीना· इस तरह बराबर सात दिन तक पीनेसे शुक्र पुष्ट होकर उसका स्वतः स्राव या पतन बंद होता है. (८) **शरीर पुष्ट और बलिष्ट होनेके लिये**—सेमलकी जड़की छालका चूर्ण शहत और चीनीके साथ मिलाकर खाना. (९) **अग्निदग्धव्रणपर**—सेमलकी रूई पानीके साथ पीस कर उसका लेप लगाना. (१०)

तिल्ली फूलने पर–सेमलके फूल रातको वफाकर और दूसरे दिन सुबह थोड़ा राईका चूर्ण मिलाकर उन्हें खाना. (११) **वीर्यपतन**–बन्द करने के लिये–सफेद सेमलके छोटे से कन्दका चूर्ण कर रखना और यह मिसरीके साथ खाना (१२) **वदपकनेके लिये**–सेमलके कोमल कन्दको निकालकर अच्छी तरह धोना और उसके ऊपर की छाल खुरच कर कन्दको कूटना, कूटनेसे उसमेंसे गाढ़ा और चिकना रस निकलेगा जिसको वदपर लगाना, इसके लगानेसे जलन शांत होगी और वद की गांठें शीघ्र पक जायंगी. (१३) **सुरामेहपर**–सेमलकी छालका क्वाथ करके पीना. (१४) **ठंडे सूजाक (प्रमेह) पर**–सफेद सेमलके कंदके पतले पतले टुकड़े करके सुखाना और उन्हें कूटकर चूर्ण कर रखना, नित्य सुबह शाम गौके एक तोला घीमें कंदका चूर्ण आधा तोला, जायफलका चूर्ण ३ रत्ती और मिसरी ६ मासे मिला कर खा जाना. कन्द न मिल सके तो छालका चूर्ण लेना. (१५) **जीर्णातिसारपर** मोचरसका ३।४ मासे चूर्ण चीनी मिलाकर खाना. (१६) **अतिसारपर**–सेमलकी छाल अथवा जड़ घिसकर पिलाना, अथवा हरी छालको कूटकर उसका रस पिलाना. (१७) **पेशाबके साथ वीर्य या शर्करा जाती हो तो** सफेद सेमलकी छाल गौके ठंढे दूधमें घिसकर उसमें जीरेका चूर्ण और चीनी मिलाकर प्रतिदिन सुबह शाम लेना, इस तरह १४ दिन तक लेना चाहिये (१८) **हृद्रोगादिरोगों के ऊपर**–सेमलकी छाल दूधमें पकाकर एक महीनाभर सेवन करना, यह प्रयोग रसायन, उत्कृष्ट बलदायक और वातनाशक है एक सालभर तक सेवन करने से मनुष्य पूरे सौ वर्ष जीता

जगद्दर्शक प्रेस, मुं०

वर्णन—मुसली एक प्रकारका छोटासा तृणक्षुप है यह प्रायः घासमें या दूसरे वृक्षोंकी छायातले होता है. बंगाल, युक्तप्रांत, दक्षिण आदि देशोंमें बांसके वनोंमें यह पौधे बहुतायतसे पैदा होते हैं. इसके पत्ते खजूरके छोटे पौधों की तरह परंतु उनसे कुछ पतले होते हैं. पत्ते विना डंठल के, सकरे, बर्छीनुमा, आधे फूट से १॥ फूट तक लंबे, चिकने और एक से दो इञ्च तक चौड़े होते हैं और उनपर रेषा यानी नसें तथा लंबे, मृदु तुषार होते हैं. इसकी जड़ अथवा कंद पांच छः उंगल लम्बी, उंगली के बराबर मोटी, कोन वाली काले, रंगकी और चारों ओर बहुत से मॉसल तंतुओंसे युक्त होती है. इस पौधे को पेड़ अथवा मध्य दंड होता ही नहीं. इसके फूल नलिकाकार, केशयुक्त, पीले रंगके नक्षत्र रूप होते हैं और जमीन के बराबर निकलते हैं. ये पौधे वर्षा ऋतुमें विशेष पैदा होते हैं. मुसली काली और सफेद दो प्रकार की होती है. उनमें सफेदकी अपेक्षा काली मुसली ही गुणोंमें श्रेष्ठ है. ऊपर जो वर्णन किया गया है वह काली मुसली का ही है.

गुण—मुसली वृष्य, धातुवर्द्धक, भारी, मधुर, किंचित् कड़वी, पुष्टिकर, बलकर, रसायन, ठंडी, पिच्छल, कफकर और रक्तदोष, दाह, पित्त तथा श्रम इनका नाश करने वाली है. काली मुसलीका कंद तोड़कर देखनेसे मालूम होता है कि इसमें स्टार्च या सत्वकीर कम है और अरेबीन जातीका गोंद विशेष है. इसके कन्दहीका दवामें उपयोग किया जाता है.

औषध प्रयोग (१) शुक्र की वृद्धि और पुष्टि के लिये—मुसलीके कन्द निकाल कर साफ धोकर, ऊपरका छिलका उतार कर सुखाना और उसका चूर्णकर रखना.

फिर प्रति दिन सुबह शाम गौके १४ तोले कच्चे दूधमें आधेसे एक तोले तक चूर्ण मिलाकर अग्नीपर रखना और कर जब आधा दूध रह जाय तब उसमें तीन तोले मिसरी और दो तोले घी डालकर सबको पकाना, जब दूधका मावा बन जाय तब उसमें जायफल, इलायची और केशर इनका थोड़ा थोड़ा चूर्ण और बादामके टुकड़े मिला कर सबको एकत्र करना और उस में से आधा पाव सुबह और आधा शामको खाना, नित्य ताजा बना कर खाना, इस प्रकार १४ दिन तक सेवन करने से धातुकी वृद्धि और पुष्टि होती है. (२) अथवा मुसली कन्द योंही चबा कर खाना, अथवा उसका चूर्ण मिसरी के साथ खाना. (३) **पथरी**—मुसली कंदके खानेसे गल जाती है. (४) **स्त्रियोंके प्रदरपर**—मुसली कन्द और गुड़हलकी (जवाकी) कलियां मिसरीके साथ खाकर ऊपर से दूध पीना. (५) **ग्रहणी रोगपर**—रोगी की सामर्थ्य के अनुसार एक तोले तक मुसली कन्दका चूर्ण छाछमें अथवा चावलों के धोये हुए जलमें मिलाकर पीना और ऊपर से छाछ के साथ भात खाना.

वच.

संस्कृत—वचा, उग्रगंधा, गोलोमी, जटिला, उग्रा, लोमशा, भद्रा, मंगल्या, विजया, रक्षोघ्नी, षड्ग्रन्था, शतपर्विका, तीक्ष्णा, गालिनी, वच्या, कान्ना, भद्रा, क्षुद्रपत्री, हनुपर्णी, स्मारणी, बोधनीया, भूतनाशिनी, श्लेष्मघ्नी, तीक्ष्णपत्रा, जलजा, हलुषग्रिका **सफेदवच**-हैमवती, शुक्ला, भोगवती

कर्पणी, दीर्घपत्रा, पारसीक यचा **म.** वेखंड; पांढरें वेखण्ड. **गु.** वज, खुरसाणी वज, घोलावज, बालावज, दुधिया वज. **बं.** वच, खोरासानी वज, श्वेत वच. **क.** वाजेगिड, नारु वेरु, वजे, कपण दगड्डे, बिले वजे० **तै०** वासा, वाडज, तेल्ला वासा० **ता०** वाशुंबु० **मला०** व्यपंपु. गोनांतक- येखंड. युनानी- अक़ुरुन. **फा०** सोसन जर्द, अगर तुरकी. **अरबी**-उदल बुज० **इं०** Sweet Flagroot स्वीट फ्लाग रूट **ला०** Acorus Calamus एकोरस केलेमस०

वर्णन-वचके वृक्ष गोंद पटीरकेसे होते हैं. इसके वृक्ष चिरायु होते हैं. मणिपूर, नागा हिलस, और युक्त प्रांतके कितने ही प्रदेशोंमें दलदलके स्थानोंमें इन वृक्षों की प्रचुर उत्पत्ति होती है. इसकी उंचाई तीन चार हाथ होती है. पत्ते लम्बे होते हैं और उन्हें वच जैसी ही उग्रगंध आती है इसकी जड़को वच कहते हैं. वच चपटी, दरदरी होती है और उसमें बहुतसी गांठें होती हैं, इसकी एक सफेद जाति ईराणसे आती है उसको खुरासानी वच कहते हैं. वचके अन्वर्थक संस्कृत नाम जो ऊपर दिये गये हैं उनसे इस वृक्ष के स्वरूप का तथा गुणोंका बहुत कुछ परिज्ञान हो जाता है. जैसे कि-उग्रगंधा-इसकी जड़की गंध बहुत उग्र होती है. जटिला-जड़में बहुत गांठें होती हैं. शतपर्विका यह भी जड़ का स्वरूप वर्णन करता है. इक्षुपर्णी-ईखकेसे पत्ते इसके होते हैं. जलजा-यह जलमय स्थानों में होती है. हैमवती -इसकी जड़ स्वर्ण वर्ण की और कुछ कुछ गुलाबी रंग की छटा ली हुई होती है. श्लेष्मघ्नी, भूत नाशिनी, रक्षो घ्नी, स्मारणी, बाधनीया ये नाम क्रमशः वच के कफघ्न,

(विशेषतः) बालकोंकी भूत ग्रहादि पीड़ा नाशक तथा मेधावर्द्धक गुणोंके सूचक हैं. युरोपियन रसायन शास्त्रियोंकी परीक्षाके अनुसार २.४ हवामें उड़ जाने वाला तेल और दूसरा एक कडुवा सत्त होता है.

गुण-वच उष्ण, तीक्ष्ण, चरपरी, कडुवी वमन करने वाली वाणीको फुर्ती देने वाली, अग्निदीपक चेतनास्थापक, प्रसूता, स्त्रियोंका, दूध सोधने वाली, योनिदोषहर, मलमूत्र शोधिक खुजली मिटाने वाली, मेधा बढ़ाने वाली, और कफ, आम, ग्रंथि सूजन ज्वर, अतिसार, वायु, उन्माद, भूत बाधा, मिरगी, राक्षसपीड़ा, मलावरोध, आध्मान, कृमि और शूलको हटानेवाली, सारुष्य देनेवाली तथा तृष्णाशामक है, सुफेद वचके गुणभी इसी प्रकारके हैं विशेषतः वह वादीके रोगों के लिये उत्तम गुणकारी है. इसकी अधिक मात्रा देनेसे वाँति होती है और थोड़ी मात्रा देनेसे कृमि, और शूलका नाश करती हैं. स्त्रियोंके उन्मादमें (हिस्टिरिया में) यह बहुत लाभ दायक है. डॉक्टर इवर्स आमातिसार, रक्तादिजन्य अतिसार, तथा बच्चोंके कफ और कंठनलिका संबंधी विकार हटानेके विषयमें वचकी बहुत प्रशंसा करते हैं. डाक्टर येरिङ्ग अपना अनुभव बताते हैं कि इसकी हरी जड़े घरमें रस्सीसे बांधकर लटका रखनेसे मच्छर, मक्खियाँ वगैरह जीवजंतु अंदर नहीं आने पाते यह गवय्योंके लिये बड़े कामकी है. गानेसे पहले थोड़ी वच खा लेनेसे आवाज, मुंह तथा वानी साफ हो जाती है. वचका चूर्ण जलके या दूधके साथ एक महीना भर खाने से मनुष्य बड़ा बुद्धिमान् और ज्ञानी होता है. चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहणके समय चार तोले वचका चूर्ण दूधके साथ खानेसे

तत्काल मनुष्य बड़ा भारी बुद्धिमान् होता है. आमविकार पर वांति करानेके लिये आध सेर नमकके पानीके साथ ८ मासे या एक तोले वचका चूर्ण पिलाया जाता है.

औषधि प्रयोग (१) सरदी, जुखाम और सिरदर्दपर- वचका चूर्ण कपड़े की पुटलीमें बांधकर बार बार सूंघते रहना. (२) **मिरगीपर-**वचका चूर्ण सहत मिलाकर चाटना और दूध भात खाना, अथवा वचको कतरकर उसके टुकड़े टुकड़े सात दिन तक घीमें डाल रखना, पीछेसे उन्हें निकाल कर पाताड़ यंत्रसे उनका तेल निकालना और जब मिरगी आवे उस समय उसको सूंघाना और कुछ बूंद नाकमें टपकाना इससे मिरगी जाती रहती है. (३) **सूर्यावर्त** (सिर दर्द) **और आधा शीशी पर-**वच और पीपर की पुटलियां बांध कर सूंघते रहना अथवा उनका चूर्ण सुंघनीकी तरह सूंघना. (४) **उन्माद पर** वचके रसमें कुलीजनका चूर्ण और शहद डाल कर देना. (५) **काले धतूरेके विष पर-**दहीके साथ भात और वेखंड खिलाना. (६) **कानके फूटनेपर-**वच और कपूर डालकर तिल्ली का तेल पकाकर कानमें छोड़ना (७) **गर्भिणी स्त्री के आनाह वायुपर-**वच और लहसन डालकर दूधको औटाना और उसमें हींग तथा कालानोन मिलाकर पिलाना. (८) **सुख प्रसूतिके लिये-**वचको पानीमें पीसकर उसकी लुगदी एरण्डीके तेलमें मिलाकर उसका नाभिपर लेपकरना. (९) **वृषणवृद्धिपर-**वच और राईको एक जगह पीसकर लेप करना.(१०) **आमातिसार रक्तातिसार और खांसीपर-** वच, धनियाँ और जीरा इनका क्वाथ पिलाना. (११) **नन्हे**

बच्चोंके तालुकंटकरोगपर (जिसमें तालू में गड्ढा सा होता है. मुंहके अन्दर तालू नीचे लटकने लगता है, बच्चा दूध नहीं पीता वमन कर देता है. गर्दन ढीली पड़ती हैं. इ.) वच और थोड़ा जायफल दूधमें या घीमें घिसकर तालु पर लेप करना और गौके दूधमें सांभर सींग घिसकर पिलाना, (१२) बच्चोंकी छातीमें कफका गोला बनजाता है और उससे दम घुटने लगता है और रह रहकर बच्चा सिटपिटाकर व्याकुल होजाता है उसपर—गौके घीमें वच को घिसना और बच्चे की छातीपर पीठ पर तथा गलेके नीचे उससे खूब मालिश करके उस उस जगहपर उसे जज्ब करदेना, (१३) **विषमज्वर पर**—वच, हग्ड़ और घी तीनों चीजें मिलाकर अग्निमें डालकर उनका धुँआ देना।

हालो (हालिम)

संस्कृत—चन्द्रशू (इ) रा, चर्महंत्री, चन्द्रिका, पशुमेहन कारिका, नन्दिनी, करवी, भद्रा, वासपुष्पा, सुवासरा, अशालिका, कालमेषा, दरकृष्णा, दीर्घबीजा, रक्तराजी, क्षिद्रुमयोजना. **म.** अहालींव, हालींव, अशेलियो. **कच्छी**—असेरियो, **सिन्धी** आहुरों, आहियों. **बं.** हालिम, **ता.** अलिवेराई. **फा.** (तुख्मे) तरीतेजक. **अरबी**—फारजीर, हय—उल. रशाद **इं.** Indian cress (cress, Seed) इण्डियन क्रेस, (क्रेस सीड) **लां.** Lepidium Sativum लेपिडियम सॅटियम्.

वर्णन—हालिमके पौधे बहुत छोटे यानी कदमे तथा देखनेमें अधिकांश धनियांके अथवा कुछ कुछ सरसोंके पौधेकी तरह होते हैं. जिस तरह शीतकालमें मेथी, चौलाई, धनियाँ वगैरह शाक बोते हैं उसी तरह हालिमकोभी बोयाई करनी पड़ती है. हिन्दुस्थानमें मेथी वगैरहके साथही, उसीके बीचमें

हालिमकेभी थोड़ेसे बीज बो देते हैं. स्वतन्त्र रूपसे तथा विस्तृत परिमाणसे इसकी बोवाई नहीं की जाती. इसलिये आवश्यकताके अनुसार बाजारमें बेचनेलायक हालिम यहां पैदा नहीं होता. इसीसे सैंकड़ों हजारों मन हालिम इरानसे हिन्दुस्थानमें आकर यहांके बाजारोंमें बिका जाता है. हालिम वृक्षकी गणना राईके उद्भिज्ज वर्गहीमें होती है. इसके पत्ते अकल करेके पत्तोंकेसे चरपरे होते हैं. केवल इसके बीजका उपयोग खानेमें तथा दवामें होता है. हालिमके बीज राईके बराबरही किन्तु उससे कुछ लम्बे होते हैं. माघसे फागुन तकमें ये बीज लगते हैं. इसकी रुचि किञ्चित कड़वी, चरपरी होती है. ये बीज बहुत लुवा बदार और लिहसावट वाले होते हैं. इनका रङ्गलाल पीला मिश्रित होता है. खानदेशमें नदीके या नहरोंके किनारेपर इसको बो देते हैं. हालिममें एक सुगन्धीतेल और एक बसामय तेल रहता है.

गुण–हालिम गरम, कडुवा और दूध पानीके मिश्रणमें पकाकर खानेसे हिचकी, बादी, कफ, दस्त, गुल्म तथा वात रक्त इनका नाश करनेवाला तथा बल और पुष्टि देनेवालाहै. युनानी हकीम इसे पेशाबलाने वाला और हृद्य मानते हैं.

औषध प्रयोग–(१) हिचकीपर–आठगुने पानीमें हालिम कुचलकर भिगो रखना. कुछ देरमें जब वे खूब लुआबदार होजायं तब उन्हें उसी पानीमें हाथसे अच्छी तरह मींजकर उस पानीको छान लेना. उसमें मिसरी डालना अथवा योंही पिलाना. चार तोल तक यह पानी पीनेसे हिचकी बन्द होती है.

हालिमकी खीर—पहले दूधको आंचपर रखकर जब वह अच्छी तरह खौलने लगे तब उसमें हालिम डालना और आंचपर औटनेकेलिये रख देना. जब हालिम मुलायम होकर दूध खीरकी तरह गाढ़ा होजाय तब उसमें गुड़ या खांड डाल देना और थोड़ी देरमें उतार लेना. यह खीर वायुको नष्ट करती है कमरको मजबूत बनाती है, वीर्यको पुष्ट करती है, कटिल और गृध्रसी वायु इन रोगोंको मिटाती है और यदि प्रसूता स्त्री खावे तो उसके स्तनोंमें बहुत दूध पैदा होता है. (३) **बादीसे दस्त होते हों तो**—हालिमका चूर्ण शक्कर के साथ खाना. (४) **हालिम का लेप**—त्वग्विकार हो, या खून जम गया हो, अथवा बादीसे जोड़ोंमें दर्द होता हो तो हालिम पानीमें भिगोकर उस उस जगह पर उसका लेप करना. यह लेप अंदरसे सारी बादी तथा दर्दको बाहर खींच लेता है (५) हालीमको जरा जरा कूटकर उसमें नीबूका रस डालना और राईके पुल्टीस की तरह यह कपड़े पर फैलाकर जिस जगह सनकें मारती हों वहां पर लगाना. इससे अंदर की सूजन तथा गठिया ये विकार आराम होते हैं. (६) आंखों में लोही चढ़ने से वे लाल हो गयी हों और दुखती हों तो हालिमके बीज दूधमें पीसकर आंखोंपर लेप करनेसे आंखे साफ होती हैं और उनका दर्द भी मिटता है. (७) आंखे सूज गयी हों तो हालिमको दूधमें मलकर उस दूधमें रुई भिगोकर आंखोंपर रखना. (८) पत्थर, किसी जानवर का सींग, लकड़ी या किसी चीजकी चोट लगने से दर्द होता हो तो हालिम सज्जीखार और मेदालकड़ी ये तीन चीजें पानीमें पीसकर लगानेसे बहुत लाभ होता है हरेक

सं. वचा. म. वेखंड
सं. चन्द्रशूर. म. हाळींव.
G V LAD
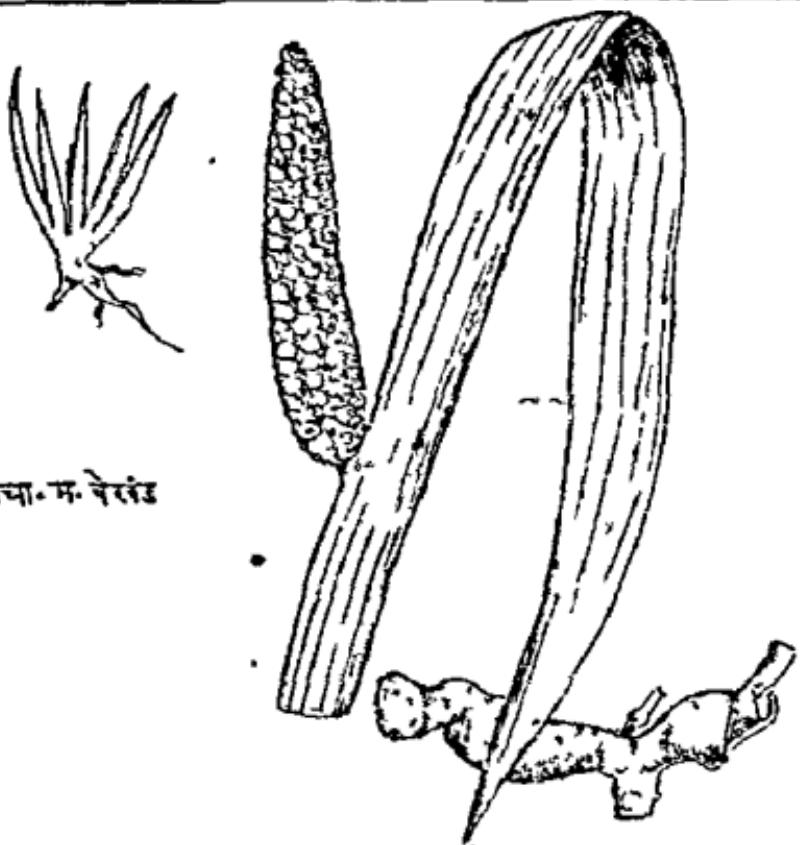
प्रकारके दर्दपर यह अच्छा उपाय है. (९) यकृतोदर और प्लीहोद- रमें यानी जब ये अवयव रक्तसंचयसे फूल जाते हैं तब हालिम देनेसे उनमें जमा हुआ रक्त जहांतहां अपने अपने उचित स्थानोंमें फैल जाता है उन अवयवोंकी सूजन उतरती है और उनकी क्रिया यथोचित रीतिसे चलने लगती है. (१०) हालिमके लड्डू (धातुपुष्टिके लिये) ताजा नारियलको खुरचकर उस खुरची हुई गरीमें उसके प्रमाणानुसार गुड और हालिम मिलाकर तीनों चीजें अच्छी तरह आमेज होनेतक आंचपर रखना. फिर नीचे उतारकर ठंडी होनेपर उसके लड्डू बनाकर खाना. (दूसरी रीति) दस १० तोले हालिम घीमें तलना. फिर गेहूंका रवा एक सेर और उडदका आटा पावभर ये दोनों घीमें अलग अलग सेंक लेना. फिर एक सेर घी और सब चीजोंके हिसाबसे शक्कर लेकर उसकी चासनी बनाना और उसमें हालिम, गेहूंका रवा, उडदका आटा और किशमिश, बादाम, चिरोंजी, पिस्ता, इलायची, जायफल, जायपत्री और पीपरामूल ये मसालेकी चीजें डालकर लड्डू या टिकियां बनाना. लड्डू या टिकियां बनाते समय पहले नीचे हालिम डालकर फिर उपरसे शक्करकी चासनी डालना. ये हालिममोदक धातुपुष्ट करनेमें बडे नामी हैं. प्रसूता स्त्रियोंकेलिये भी बहुत उत्तम हैं. शीतकालमें इनका सेवन करना चाहिये.

मात्रा—सौम्य रेचकके तौरपर जब हालिम लेना हो तब उसकी मात्रा दो माशे लेनी चाहिये. रक्तशुद्धिके लिये पांच रत्ती लेना और वीर्य पुष्टिके लिये एकमाशा लेना. यह सर्व साधारण मात्राप्रमाण है. परंतु रोगीकी अवस्था और शक्तिको देखकर तीन माशेतकभी यह दिया जा सकता है.

वनौषधिविज्ञान
प्रथम भाग
परिशिष्ट.

कुचला.

कितनेही स्थानोंमें कुचलेकी कॉफी बनाकर पं
है. इस पुस्तकके १३ वें पृष्ठपर कुचलेकी शोधनविधि दी गयी है. उसके अनुसार कुचलेके बीज शुद्ध करके उनका चूर्ण बनाय रखे और फिर उसको गरम पानीके साथ पिये. यह बहुत गरम होती है और इसके पीनेसे बडे जोरकी भूख लगती है. इसीलिये अजीर्ण, पेटका दर्द-मरोड और अग्निमान्द्य इन रोगोंमें इसे देते हैं. इससे पैरोंकी पिंडलियोंका दर्द दूर होता है, कमजोरी जाती रहती है और दस्त और रक्तातिसारमें (खूनके दस्त) लाभ होता है. किसी दूसरी बीमारीमेंभी जब बीमार कमजोर हो जाता है तब इसके देनेसे उसकी ताकद बढती है और बीमारी बढने नहीं पाती. साराश, जिन जिन रोगोंमें कमजोरी पैदा होती है उन सबमें कुचलेसे लाभ होता है. हाथ पैरोंकी सूजन और गुदभ्रंश (कांच निकल आना) में कुचला बहुत गुणकारी है. शारीरिक या मस्तिष्कके अथवा कोठरज्जुगत ज्ञानतंतुकी कमजोरीसे कभी कभी बालक बिछौनेमें रातको नींदमें पेशाब करते हैं. उनको कुचला देनेसे उनकी यह आदत छूट जाती है. वातरोगोंमें कुचलेकी थोडी मात्रा बहुत दिनतक सतत लेनेसे अच्छा फायदा होता है. पुराना गठिया, कमरका जकडना, जोडोंमें दर्द, पक्षाघात, अर्दित (मुंह टेढा होना) वगैरह वातरोगोंमें देनेके लिये कुचलेके जोडकी बहुतही कम दवाइयां हैं. परंतु उसमें यह विशेषता है कि ये रोग जब नये होते हैं तब कुचलेसे लाभ नहीं होता. जब वे दो चार महीनेके पुराने होकर उनके संबंधी वातदोषके सिवाय इतर दोषोंका शमन हो जाय तबही कुचला देनेसे अच्छा लाभ होता है. यानी

उक्त वातरोगोंमें यदि बीमार बेहोश होगया हो, पैर कांपते हों और उसकी दशा भयंकर हो तो उस अवस्थामें कुचला देनेसे लाभ नहीं होगा. जब ये सारे लक्षण दूर हो जाएं; हिचकी वांति वगैरह बंद हो और रोगी मामूली तरह खाने पीने लग जाय; अथवा यदि ये विकार बंद न हों तो कमसे कम जीर्ण—पुराने होजाएं तबही कुचला देना चाहिये. नयी बिमारीमें कुचला देनेसे उलटी बीमारी बढती है. वायुके कारण कुछ लोगोंके हाथ पैर कांपते हैं लिखते समय कलईसे हाथ कांपने लगता है और कलम चलाते समय उंगलियां ठिठुर जाती हैं. इस अवस्थाके बीमारको दो चार महीनेतक बराबर कुचला लेना चाहिये. कुचलेका स्वाद बहुत कडवा होता है. जीर्णज्वरमेंभी यह बहुत फायदा करता है. पुष्टिकेलिये तो यह बहुतही प्रशस्त है. धातुपुष्टिकी प्रायः दवाओंमें इसका योग होता है. वीर्यस्राव शुक्रदोष तथा तज्जनित दुर्बलता इन दोषोंको यह जडसे निकाल डालता है. विद्यार्थीयोंके वीर्यस्रावपर तो हमारी रायमें यह एक अपूर्व दवा है. अत्यंत स्त्रीसंगसे या मुष्टिमैथुनादि अन्य कारणोंसे वीर्यका क्षय होकर शरीरमें हड्डोंकी कमजोरी और शिथिलता आ जाती है उसको कुचला देनेसे वीर्य पुष्ट होकर शरीर दृढ और बलिष्ठ होता है. कुचला मस्तिष्कमें तथा कोडरज्जु (पृष्ठवंश) में रहनेवाले ज्ञानतंतुओंको पुष्ट करता है वीर्यवाहक नसोंका चैतन्यस्थान पृष्ठवंशगत ज्ञानतंतुओंमें है वहभी इससे पुष्ट होता है और इसी कारण वीर्यवाहक नसें वीर्यका स्राव जल्दी नहीं कर सकतीं. इन्द्रियकी दुर्बलता या पुरुषत्वकी हानिके लियेभी यह एक उत्तम औषध है. मनुष्यकी मानसिक शक्ति जब बहुत घट जाती है, जब उसका चित्तस्थैर्य स्खलित होता है उस समय कुचला देनेसे अच्छा फायदा होता है. स्त्रियोंको 'हिस्टिरिया' नामक वातोन्माद होता है उसपरभी कुचला गुणकारी है.

(१) शूलहरणयोग—हरड, पीपर, गोल मिर्च, सोंठ, कुचला, हींग, गंधक और सेंधा नमक ये सब चीजें समभागसे लेकर उनका चूर्ण

करना और अद्रक या नींबूके रसमें घोटकर दो दो रत्ती वजनकी गोलिया बना रखना और हर वख्त एक एक गोली गरम पानीके साथ लेना. अग्निमान्द्यकेलिये यह बहुत उत्तम दवा है. इससे जाठररस बहुतायतसे पैदा होता है और उसकी वजेसे अन्नका अच्छी तरह पचन होता है

(२) कुचलेकी कॉफी–गरम पानीके साथ लेनेसे अन्नपचन उत्तम प्रकारसे होता है. अगर अजीर्णमें बीच बीचमें वांती होती हो तो वह कुचलेकी कॉफीसे दब जाती है. अग्निमांद्य, अरुचि और पेटमें मरोड पेचिश इन विकारोंमें यह कॉफी बहुत प्रशस्त है. विशेष करके वात प्रकृतिके मनुष्योंकेलिये कुचला बहुत अनुकूल होता है वातविकारोंको वह बहुतही जल्दी दबा डालता है कितनेही अफीमची आदमी जब हाथ पैरोंकी पिंडलियोंमें बहुत थकान मालूम होता है तब कुचलेकी कॉफी लेते है कॉफीकी मात्रा वय और अवस्थाके अनुसार १ रत्तीसे ६ रत्तीतक. (३) विषमुष्टिगुटिका–(कुचलेकी गोलिया) शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, शुद्ध बचनाग, अजवायन, त्रिफला, सज्जीखार, जवाखार, सैंधा-नोन, चीतेकी जड, जीरा, काला नोन, वायविडंग और त्रिकुटा ये सब चीजें समाशमे लेना और इन सबके बराबर भुने हुए कुंचलेका चूर्ण उनमें मिलाकर यह सब चूर्ण नींबूके रसमें घोटकर दो दो रत्तीकी गोलिया बना रखना और अग्निमान्द्य अजीर्ण, आमविकार, जीर्णज्वर तथा अनेक प्रकारके वातरोगोंपर यथोचित अनुपानसे देना.

कुचलेका (डॉक्टर लोगोंका स्ट्रिकनिया) जहरी असर–शरीर पर होनेसे प्राय. धनुस्तम्भकेसे लक्षण होते है इसका असर कोडरज्जुपर होता है. कुचलेकी अधिक मात्रा खानेसे कुछ मिनटोंमें या ज्यादासे ज्यादा एक दो घंटेमें जहरका असर होने लगता है प्रथम सिरके तथा हाथ पैरोंके स्नायु खिंचने लगते है हाथ पैर कापने लगते है. थोडी देरमें सारा शरीर तनने लगता है और कमानकी तरह मुड जाता है. हाथ पैर अकड जाते हैं मुंह और दंतपंक्तिया जकड जाती हैं जिससे मुंह खुलने नहीं

पाता. मुंहपर रक्त जमा होता है जिससे मुंह लाल सुर्ख हो जाता है, मुंह सूखता है, बारंबार अतिशय तृषा लगती है और मुंहसे झाग निकलती है. इतनी खराब हालत होनेपरभी बीमारकी मानसिक शक्ति तादृश क्षीण नहीं होती.

धनुस्तंभके तथा कुचलेके विषके लक्षणोंमें नीचे लिखे अनुसार खास खास फरक होते हैं. (१) कुचलेके विषैले लक्षण आरंभमेंही स्पष्ट दिखाई देते हैं और जल्दी जल्दी बढते जाते हैं. धनुस्तंभके लक्षण प्रथम अस्पष्ट होते हैं और फिर धीरे धीरे बढते जाते हैं. (२) कुचलेसे शरीरके सारे स्नायु पहले खिंचे जाते हैं और फिर मुंह तथा दंतपंक्तियां अकडती हैं. धनुस्तंभमें प्रथम मुंह और दंतपंक्तियां अकडती हैं और फिर शरीरके भिन्न भिन्न अंगोंके स्नायु तनने लगते हैं. (३) कुचलेसे आरंभहीमें बाह्यायाम होता है और धनुस्तंभमें वह पीछेसे धीरे धीरे होता है. (४) कुचलेसे दो दो तीन तीन मिनटमें रह रहकर शरीरकी खैंचतान होती है और उसका वेग निकलजानेपर दूसरा वेग आनेतक बीमार आरामसे रहता है. धनुस्तंभमें खींचातानीका वेग केवल कुछ हलका पडता है, साफ नहीं जाता. और वेग हलका पडनेपरभी शरीर ज्योंका त्यों तनाही रहता है. (५) कुचलेसे बीमार या तो दो चार घंटेमें मर जाता है अथवा आराम होता है और धनुस्तंभमें बीमार एक दो, चार, पांच दिनतकभी जीता रहकर मरता है या आरोग्यलाभ करता है. कुचलेकी अतिमात्रा लेनेसे सामान्यतः ५ मिनटसे लेकर आधे घंटेके भीतर भीतर जहरी लक्षण दिखाई देते हैं. कभी कभी दसबीस मिनटके भीतर ही आदमी मर जाता है. अधिकसे अधिक छ घंटेतक आदमी जीता रह सकता है. कुचलेके बीजका चूर्ण १॥ माशा, स्ट्रिकनिया सत्त अंदाज आधे गेहूंके बराबर और एक्सट्राक्ट ३।४ रत्ती लेनेसे मनुष्यकी मृत्यु होती है. कुचलेका बीज मये छिलकेके खा जानेसे वह ज्योंका त्यों मलद्वारसे निकल पडता है. उसका असर शरीरपर कु-

छमी नहीं होता, क्योंकि उसका छिलका ऐसा सख्त होता है कि – यदि न निकाला जाय तो बीज कभी पेटमें पचन नहीं हो सकेगा.

जहर उतारनेके उपाय—कुचलेके जहरी लक्षण दिखाई देते ही वमन कराना, दस्त कराना तथा कपूरका पानी पिलाना चाहिये. डॉक्टर लोग बीमारको क्लोरोफार्म सुंघाकर या क्लोरल हायड्रेट पिलाकर उसको नशामें रखते हैं क्लोरल हायड्रेट कुचलेका विष नाश करता है. प्राणिज कोयला या टॅनिक ॲसिडभी डॉक्टर लोग दिया करते हैं.

अफीम.

शोधनविधि—अफीमको अद्रकके रसके २१ पुट देनेसे यानी २१ बार उसको अद्रकके रसमें घोंटनेसे (जब एकबार डाला हुआ रस घोंटनेसे सूख जाय तब दूसरी बार डालना चाहिये. इस प्रकार २१ बार करे) अफीम शुद्ध—दवामें बरतने लायक होती है. (२) एक घडेमें गौका दूध भरकर उसके मुंहपर एक लकडी रख दी जाय और उस लकडीसे अफीमकी पोटली बांध दी जाय जो घडेमें दूधके भीतर लटकती रहे फिर उस घडेको ॰ग्निपर रखकर वह अफीम उसी तरह आठ प्रहरतक दूधमें उबलती रहनेसे शुद्ध होती है (३) केवळ कॉफीके या खाली चाहके काथके अद्रककी तरह २१ पुट देनेसेभी अफीम शुद्ध होती है. (यह तीसरी रीति हमारे एक मित्रकी बतायी हुई है.)

व्यसनी पुरुष विविध प्रकारसे अफीमका सेवन करते हैं. कोई छोटी छोटी गोली बन कर खाते हैं, कोई पानीमें घोलकर पीते हैं, (जिसे कुसुंबा कहते हैं) कोई तमाखूकी तरह पीते हैं; रजपूतानेमें कहीं कहीं खसखसके कोमल पोस्तको (डोडोंको) पानीमें भिगो कर वह पानी पीते हैं. (इसको ' तेजारा ' कहते हैं.) हिंदुस्थानमें जिस तरह तमाखूसे गुडाखू बनाते हैं उसी तरह जावा और सुमात्रा टापूके लोग अफीममें शक्कर और केळे मिलाकर उसका गुडाखू बनाकर पीते हैं. तुर्क

स्तानमें अफीमके साथ गांजा वगैरह नशीली चीजें तथा दूसरा-मसाला-मिलाकर माजूम बनाकर खाते हैं. कभी कभी शरबतमें अफीम घोलकरभी पीते हैं. ब्रह्मदेश, आसाम, चीन वगैरह देशोंमें तो अफीमके विचित्र प्रकारके खाद्य पेय पदार्थ बनाते हैं.

अंग्रेजी दवाओंमें खुद अफीमकी अपेक्षा उनके सत्तका विशेष उपयोग करते हैं. उस सत्तका नाम "मॉर्फिया" है. अंग्रेजी दवावाले अफीमके अनेक प्रकारके कल्प बनाते हैं (जिनका वर्णन हम आगे करेंगे) परंतु उन सबमें 'मॉर्फिया' ही मुख्य है हिंदुस्थानकी अफीममें मॉर्फिया कम होनेसे विलायती दवाइयोंके कारखानदार यहांकी अफीम नहीं खरीदते तुर्कस्तान वगैरह देशोंकी अफीम लेते हैं तुर्की अफीममेंसे फी सदी ८ से १७ अंश मॉर्फिया निकलता है और हिंदी अफीममेंसे फीसदी केवल ३ से ७ अंशतक निकलता है. इस विषयके कुछ जानकार आदमी इसका यह कारण बताते हैं कि अफीम जिस समय कुछ पतलीसी होती है उस समय एक महीनेतक उसे धूपमें रख देते हैं जिससे उसके अंदरका 'मॉर्फिया' कम होता है इसलिये यदि अफीम पोस्तसे निकालते ही बेचनेकेलिये तैयार की जाय तो उसमेंसे 'मॉर्फिया' पूरे प्रमाणमें निकलेगा और उस अफीमकी बिक्री यूरपमें होगी.

मॉर्फियामें एक ऐसा विचित्र गुण है कि शरीरके किसी भागमें यदि असह्य वेदना होती हो तो उस जगहपर त्वचामें एक बहुत सूक्ष्म छिद्र करके उसमें एक सूईके द्वारा मॉर्फियाका एक बूंद डाल देनेसे तत्काल वेदना शांत होती है, परंतु उसके साथही नशा चढता है और चित्तको एक प्रकारकी प्रसन्नता मालूम होती है. परंतु दो चार बार इस प्रकार करनेसे उसका एक व्यसनही हो जाता है यूरपमें सैंकडों मेमें इस व्यसनमें फंसी हुई देखनेमें आती हैं. वे हर वख्त मॉर्फियासे भरी हुई एक छोटीसी पिचकारी पास रखती हैं और उसका सूक्ष्म मुख या सूई शरीरके किसी भागमें औरोंसे छिपकर गडाती हैं और उसके अंदर मॉर्फि-

याका एक बूंद डाल देती हैं जिससे एक प्रकारका क्षणिक आनंद प्राप्त होता है. कितनीही स्त्रियां तो इसकदर इस व्यसनसे पागल हो गयी हैं कि बारबार छेदनेसे उनके शरीरपर बडे बडे क्षत हो गये है.

रसायनशास्त्रके अनुसार अफीमका पृथक्करण करनेसे जितने गुणकारी सत्त्व उसमेंसे निकलते है उतने शायदही किसी दूसरी वनस्पतिसे निकलते हों. इसी लिये कुछ साल पहले अफीमका प्रचार रोकनेके बारेमें उचित सल्लाह देनेकेलिये सरकारकी ओरसे जो एक कमिशन मुकर्रर हुआ था उसके सामने इजहार देते समय कितनेही युरोपियन तथा देशी डॉक्टरोंने कहा था कि " व्यसनके रूपमेंभी अफीम शराबकी अपेक्षा अधिक लाभकारक है. " अफीमका मुख्य घटक सत्व जो मॉर्फिया उसका पता यूरपमें सबसे प्रथम ई–स–१८१६ में एक जर्मन डॉक्टरने लगाया था. मॉर्फियाके सिवाय कोडिया नार्कोटिन, शुद्ध मॉर्फिया, थिबाइना, नार्शिया; पपेव्हेरिना, न्हीयाडाइना, एक प्रकारकी शक्कर गूंद; रंजनीय द्रव्य और चरबी इत्यादि पदार्थभी इसमें होते हैं.

स्वच्छ अफीमकी परीक्षा—अफीमका वजन बढानेकेलिये धूर्त लोग उसमें खसखस वृक्षके पत्ते, कत्थेका चूरा, काला गुड, सूखे हुए पुराने कंडोंका चूरा, बालू या एलुआ इन चीजोंकी मिलावट करते हैं. इस प्रकारकी मिलावटकी अफीम दवाके काममें अनुपयोगी होनेसे वैद्यको परीक्षा करके स्वच्छ अफीम लेनी चाहिये. स्वच्छ अफीमकी गंध बहुत तीव्र और तेज होती है. स्वाद उसका बहुत कडवा होता है. उसका टुकडा चीरनेसे अंतर्भाग चमकदार और मुलायम होता है. पानीमें डालनेसे जल्दी पिगल जाता है और पानीके साथ मिलता है. उसमें बालू या कूडा करकट कुछ नहीं होता. स्वच्छ अफीम दस पांच मिनटतक सूंघनेसे नींद आती है. उसका टुकडा धूपमें रखनेसे जल्दी पिगलने लगता है. उसको अग्नि या दियेपर रखनेसे वह बलने लगता है. परंतु लकडीकी तरह उसका कोयला नहीं बनता. जलने समय उसकी ज्वाला स्वच्छ

निकलती है. उसमें मल या धुआं विशेष नहीं होता. यदि जलती हुई अफीम सुंघायी जाय तो उसमेंसे अत्यंत तीव्र और मादक गंध निकलती है. ये स्वच्छ अफीमके गुण हैं. इससे विपरीत गुणवाली अफीम अशुद्ध जान लेना.

दवामें उपयोग—दस्त बंद करनेके लिये अफीम सबसे बढकर दवा है इस बातको प्रायः लोग जानते हैं. नयी पेचिश, पुरानी पेचिश, संग्रहणी, अतिसार रक्तातिसार, और हैजा इन रोगोंमें अफीमका बहुत उपयोग किया जाता है और उसके साथ दूसरी संग्राहक (कब्ज करनेवाली) दवाएंभी मिलायी जाती है. अफीमसे दस्त कब्ज होकर बादीसे पेट फूलनेका भय रहता है. इसलिये उसको दीपक, पाचक दवाओंके संयोगसे देना प्रशस्त है. पीछे अफीमके वर्णनमें आमराक्षसीका जो योग लिखा गया है उसमें भूलसे हिंगुल (सिगरफ) लिखना छूट गया है. कोई कोई विना हिंगुलकेभी उसे बरतते हैं. जबरदस्त हैजेके दस्त इस आमराक्षसीसे बंद हो जाते हैं. पिंडलियोंका दर्द तथा ऐंठन वगैरहभी दूर होते हैं और शरीर सतेज रहता है. संग्रहणीमें जब सारे शरीरमें सूजन आती है और जठराग्नि बिलकुल नष्टप्राय होता है उस समय पीछे बतायी हुई दुग्धवटी बडा गुण करती है. कभी कभी पुरानी संग्रहणीमें बीच बीचमें ज्वर आता है और भयंकर स्वरूपकी संग्रहणीमें तो शरीरसे ज्वर बिलकुल हटताही नहीं. ऐसी अवस्थामें शंभुनाथरस (जिसका पाठ हम आगे लिखेंगे) अदरकके रसमें लेनेसे ज्वर हलका पडता है और दस्त बंद होते है. तीक्ष्ण अजीर्णमें अगर दस्त होते हों तो रेंडीके तेलके साथ या किसी दूसरी सारक दवाके साथ अफीम देनी चाहिये. पेटमें शूल, मरोड या कतरनकासा सख्त दर्द होता हो तो केवल अफीम देनेसेभी लाभ होता है. जो पेटमें बहुत सख्त दर्द हो और ज्वरभी जोरका हो या पेटके किसी भागमें दाह मालूम हो तो अफीम और शुद्ध पारा दोनों मिलाकर देना प्रशस्त है. पित्तजन्य पथरी

जब नाच उतरता है तब पेटमें यकृत्के नीचे सख्त दर्द होता है. यहांतक कि कभी कभी बीमार मारे दर्दके दोहरा हो जाता है और चिल्लाता रहता है. इस अवस्थामें अफीमका कुसुंबा देनेसे दर्द बहुत जल्दी मिट जाता है. उन्मादमें अफीम अच्छा गुण दिखलाती है. उसके आरंभ हीसे अफीमकी योग्य मात्रा देनेसे कदाचित् उन्माद रुकभी जाता है. उन्मादमें जब बीमारको अपने शरीरका भय रहता है और जब थोडी थोडी देरमें उसको जोश चढता और उतरता है उस समय अफीम बहुत गुण करती है. उन्मादमें हर वख्त १ रत्तीभर अफीम देनी पडती है. क्योंकि इसमें बीमार अफीम की बडी भारी मात्राको बरदाश्त कर सकता है और वारवार इस कदर बडी मात्रा देनेपरभी उससे कुछ जहरी लक्षण नहीं पैदा होते. उन्मादमें जो निद्रानाश विशेष करके होता है उसको अफीम दूर करती है और नींद आनेसे आराम होता है. जिस उन्मादमें चेहरा फीका होता है, नाडी मंद चलती है और नींद न आनेसे शरीर क्षीण हो जाता है उसमें अफीम देना उचित है. परंतु यदि चेहरा सुर्ख हो गया हो या सिर और मुंहकी नसोंमें लोहि भर गया हो तो अफीम नहीं देनी चाहिये. शरीरका तनना, अकडना, धनुस्तंभ और जलसंत्रास (पागलकुत्तेकेकाटनेसे होनेवाला रोग) इन रोगोंमें अफीम देनेसे अच्छा फायदा होता है. कमरका दर्द, सिरदर्द तथा आधासीसी में अफीम देनेसे पीडा शांत होती है. बडे बडे दारुण रोगोंमें रोगीको असह्य वेदना न जान पडे इस उद्देशसे अफीम दी जाती है. जिस स्थानमें दर्द हो वहांपर ऊपरसे अफीम या अफीमका तेल लगानेसे दर्द जाता रहता है. आंखके कृष्णमंडलमें क्षत होनेसे अधिमंथ रोग होनेका भय रहता है उस समय और कनीनिका (Iris) के रोगमें अफीमका उपयोग करते हैं. शरीरके बाहरी भागमें अफीम लगाते समय इस बातको अच्छी तरह देख लेना चाहिये कि जिस जगह अफीम लगायी जाती है उस जगहकी चमडी फटी हुई नहीं है या वहां कोई छाला

नहीं है. अगर छालेपर अफीम लगाई जाय तो वह खूनमें मिलकर उसका जहर चढता है. कितनेही लोग अफीम और कनेरके फूल एक जगह पीसकर नारूपर लगाते है. पसलियोंके दर्दपरभी अफीम गुणकारी है.

जब किसी बीमारीके कारण नींद न आती हो उस समय अफीम देते है. एक ज्वर छोडकर और सब रोगोंमें अफीमके. बराबर नींद लानेवाली दूसरी कोई दवा नहीं है. कितनेही रोग ऐसे होते हैं कि अगर उनमें बीमारको नींद आ जाय तो उनका (रोगोंका) जोर. घट जाता है. इस प्रकारके रोगोंमें अफीमकी उचित मात्रा देना हितकर है. रक्तपित्तमें जब खांसीके साथ या और किसी मार्गसे लोही गिरता है तबभी अफीम देना हितकर है. उरःक्षतमें यदि रक्तमिश्रित कफ निकलता हो तो अफीम देनेसे आराम होता है. इस रोगपर अर्कआहिफेनादि गुटिका (आगे देखिये) बहुत गुणकारी है. रातको जब सख्त जोरकी खांसी ठेर ठेर कर जोशसे आती है तब थोडी अफीम दियेपर सेंककर खानेसे खांसी नरम पडती है. गर्भिणी स्त्रीको आसपासके अवयवोंपर गर्भाशयका दबाव पडनेसे कभी कभी ऐसी जोरकी खांसी आती है कि. उससे बारबार वमन होता हे और गर्भिणी सोने नहीं पाती. इस प्रकारकी खांसीमें अफीम सेंककर देनेसे तत्काल बंद होती हैं. दम, खांसी वगैरह रोग जबतक अफीमकी असर शरीरमें है तबतक जोर नहीं कर सकते. इसलिये कितनेही इन. रोगोंसे पीडित आदमी हमेशा अफीम खाते हैं. श्वास रोगमें अफीम और कस्तूरी दोनों मिलाकर देनेसे बडा काम करते है. खांसीमें जब अफीम देनी हो तब पहले छातीमें जमा हुआ कफ किसी दवासे निकाल डालकर फिर पीछेसे अफीम दी जाय. कफजन्य खांसीमें अफीम देनेसे छातीमें कफ जमा होकर उससे लाभके बदले हानि होती है. उसीतरह खांसीके साथ जब ज्वर चढा हो तब अफीम नहीं देनी चाहिये.

—

१. पीडितार्तव (Dysmenorrhea) और अत्यार्तव (Menorrhagia) में अफीम दी जाती है. पीडितार्तवमें वस्तिमें पीडा होती है और पृष्ठवंश फट जाता है. ये विकार अफीमसे दूर होते हैं. अत्यार्तवमें अतिशय लोही निकलता है वह अफीमसे बंद होता है. जिस गर्भवती स्त्रीको गर्भपातकी टेव होती है उसको अगर तीसरे चौथे महीनेमें आर्तवस्राव होने लगे तो तत्काल अफीमका योग्य उपयोग करनेमे गर्भस्राव होनेसे रुक जाता है. स्त्रीको प्रसूतिकेसमय, प्रसूतिसे पहले या प्रसूतिके पीछे अगर अत्यंत रक्तस्राव होता हो तो वह अफीम देनेमे बंद होता है. गर्भिणी स्त्रीकी वांति या मामूली वमनमें अफीम अच्छा गुण दिखाती है. प्रमेहमें जब इंद्रिय टेढी हो जाती है और बीचमें खांच पडती है उस समय अथवा इंद्रिय खडी होते समय बडा सख्त दर्द होता है उसपर, अफीम और कपूर दोनों मिलाकर देनेमे केवल पीडाही शमन नहीं होती किंतु टेढी इंद्रियभी सीधी होती है. सूतिका सन्निपात (Puerperal mania) में तथा छोटी उमरकी स्त्रियोंके बच्चा जननेसे उन्हें उन्माद होता है उसमें अफीम देनेसे बहुत कुछ लाभ होता है. अफीमकी मात्राका ध्यान रखकर उसका चाहे जिस प्रकारका योग दिया जा सकता है. पुराने गठिया रोगपर खानेमें तथा मालिश करनेमें अफीमका उपयोग किया जाता है. आंख उठ आयी हो तो अफीम और अजवायनकी पुटरी बांधकर उससे आंख सेंकते हैं और अफीम तथा तावेपर सेंकी हुई फिटकिरीकी खील ये दोनों एकत्र करके उनके एक दो बूंद आंखमें निचोडते हैं. कानके दर्दमें अफीम पतली करके उसके दो एक बूंद डालनेसे दर्द बंद होता है. दातमें दर्द हो या डाढमें गढा पडा हो तो अफीमकी छोटीसी डलिया तुलसीके पत्तेमें लपेटकर उस दात या डाढ पर रखनेसे दर्द दूर होता है और गढा भर आता है. मुंहमेंसे जब बहुत थूंक निकलता है और जब उपदंश-रोगमें जबरदस्ती मुंह फूलनेकी दवा दी जाती है और उसमें बराबर लार बहतीही रहती है उससमय उसे बंद करनेके लिये और मुंह फिरसे पूर्ववत् साफ करनेके लिये अफीमका उपयोग करते हैं

वातरक्त, चूहका नव, कुष्ठ, विचर्चिका आदि बडे दारुण और असाध्य प्राय रोगोंमें अफीम फायदा पहुंचाती है. उससे ये रोग मिट तो नहीं जाते. परंतु खास करके उनका जोर दब जाता है. वातरक्तमें होनेवाला दाह अफीमसे शांत होता है. पिंडलियोंमें होनेवाली सख्तसे सख्त ऐंठन अफीमसे दब जाती है. इंद्रलुप्त (सिरमें फुन्सियां होती हैं, वे पकती हैं, उनमेंसे पीप निकलती है और वहाके बाल गिर पडते हैं) पर नींबूके रसमें अफीम मिलाकर लेप करना. अफीममें कोई तादृश वृष्य - यानी वीर्यवृद्धिकर गुण - नहीं है. उसमें स्तंभक यानी कब्ज करनेका गुण है. इस कारण पुरुष बहुत देरतक मैथुन कर सकता है और इसीलिये बहुतसे कामी पुरुष नित्य अफीम खानेकी आदत रखते हैं. परंतु इसमें वे बडी भारी भूल करते हैं. अफीमके साथ दूसरी वृष्य, स्तंभक तथा गरम दवाएं मिलाकर पुरुषत्वकेलिये देते हैं. अफीम लेनेसे श्रम नहीं मालूम होता और इसीसे लोग उसमें वाजीकरण गुण होनेका अनुमान करते हैं.

मधुमेहके लिये अफीम बहुत अच्छी दवा है. परंतु मधुमेहमें उसकी मात्रा अधिक देनी पडती है. हररोज जब एक या दो वाल अफीम दी जाय तब कहीं जाकर उसका कुछ असर होता है. और इस प्रकार मुद्दत तक वह देनी पडती है. अफीमसे मधुमेह साफ आराम होता हो सो तो बात नहीं है. परंतु इतनी बात जरूर है कि और बीसों प्रकारकी दवाओंकी अपेक्षा अफीम अधिक फायदा करती है. प्रमेह जितना पुराना हो और मधुमेही जितना अधिक बुड्ढा हो उतना अफीमसे अधिक फायदा होता है. जवान आदमीको अफीमसे इस कदर फायदा नहीं होता. मधुमेहीको ऐसी सख्त तृषा लगती है कि कितनाही पानी पीनेपर वह शांत नहीं होती. इस प्रकारकी तृषा शमन करनेके लिये अफीमके बराबर दूसरी कोई प्रसिद्ध दवा नहीं है. उससे पेशाबके द्वारा शर्करा कम जाती है और दुर्बलता भी कम होती है. अफीमके साथ माजूफलका

चूर्ण मिलानेसे इसका असर अधिक होता है. आधीरत्ती अफीम औ एक वाल माजूफलका चूर्ण इतनेकी एक एक गोली बनाकर दिनमें ं गोलियां देना.

अफीमका असर—अफीमकी अल्पमात्रा लेनेसे प्रथम शरीरके रोंवे खडे होते हैं, चेहरा प्रफुल्लित होता है, आंखें तेजस्वी दीखती हैं और मस्तक अनेक प्रकारके चित्रविचित्र और मजेदार विचारोंसे पु होता है. पीछेसे जब अफीमका असर जाता रहता है तब सिर भारी होता है, उठते समय चक्कर आती है, भूख नहीं लगती और दस्त कब्ज होता है. यदि किंचित् अधिक मात्रा ली जाय तो शरीर अधिक प्रफुल्लित होता है, परंतु यह अवस्था अधिक समय तक नहीं रहती जरा देरमें आदमी एकदम झोंके खाने लगता है, उसको कुछ होश नहीं रहते और उसमें बैठनेकी भी शक्ति नहीं रहती; इससे वह लेटने लगता है. इससे भी कुछ अधिक मात्रा खानेसे आदमी इस कदर बेहोश हो जाता है कि बडे जोर जोरसे चिल्लाकर पुकारनेसे, खूब हिलानेसे नाकपर कुछ हींग जैसी गरम चीज घिसनेसे या मुंहपर गीला कपडा मारनेसे भी वह नहीं बोलता. आखकी पुतली संकुचित होती है और उजियाला या अंधेरा उसको कुछभी नहीं सुझाई पडता.

अफीमका जहरी असर—अफीम बहुत कडवी होनेसे परायी हत्या करनेके काममें वह नहीं आती इससे प्रायः आत्महत्या करनेवालही इसे लेते हैं. कमसे कम २ रत्ती अफीममें मृत्यु हो सकती है. अफीमकी अधिक मात्रा लेनेसे प्रथम नींद आती हो ऐसा मालूम होता है, जरा देरमें चक्कर आती है, जी घबराता है और आखिर आदमी गाफिल हो जाता है. जब जोरसे उसको पुकारा जाय तब कुछ जागृतसा होकर कुछ जवाब देता है. परंतु पीछेसे बोलचाल बिलकुलही बंद हो जाती है, नाडी भरी होनेपरभी धीमी, मंद और अनियमित चलती है अथवा खाली होकर भी जल्दी चलती है श्वास बडी तेजीसे चलता

है, दम घुटता है, शरीर कुछ कुछ तप्त होता है और खूब पसीना छटता है, आंखें बंद होती हैं, आंखकी पुतली बहुतही बारीक यानी सुईके नोक जितनी होती है, चेहरा फीका होता है, होठ, जिव्हा, नाखून और हाथ काले होते हैं और मलावरोध होकर पेट फूलता है. मरनेसे कुछही देर पहले शरीर ठंडा होता है, आंखकी पुतली जो पहले संकुचित होती है सो फैल जाती है, नाडी हाथ नहीं लगती, हाथ पैरोंके स्नायु शिथिल होते है, गलेमें कुछ आवाज होता हो ऐसा प्रतीत होता है और थोडी देरमें दम घुटकर आदमी मर जाता है. कभी कभी अफीमके-विषसे शरीरकी खैंचातान, प्रलाप, वमन, दस्त, धनुस्तंभ, वगैरह विकारभी होते है. अगर बीमार बचनेवाला हो तो उसे होश आने लगते है, वमन होता है और सिर दर्द करने लगता है. अगर अफीमकी बहुतही बडी मात्रा खानेमें आ जाय तो उससे वांति होती है. अफीम लेनेके समयसे एक घंटेके भीतर उसका जहरी असर मालूम होने लगता है और प्रायः २४ घंटेमें आदमी मर जाता है.

जहर उतारनेके उपाय—हम पीछे बहुतसे लिख चुके हैं. उसके अलावा औरभी कुछ थोडेसे उपाय यहां लिख देते हैं. अफीमका या और किसी विषैली चीजका विष उतारनेके मुख्य दो मार्ग हैं. एक यह कि विष खानेके बाद यदि तत्काल उसकी खबर हो जाये तो वमन करवाकर उसके द्वारा पेटमें गया हुआ सारा विष बाहर निकाल डालना. और दूसरा मार्ग यह है कि यदि विष खानेसे बहुत देर बाद उसकी खबर मिल जाय और तब तक विषका थोडा या अधिक असर रक्तमें हो गया हो तो उस उस विषको मारनेवाली विरुद्ध गुणकी दवाएं देना, जिससे विषका असर मिट जायं.

डॉक्टर लोग वमन करानेकेलिये " सल्फेट ऑफ झिंक " १० ग्रेन " या इपिकाक्युएना पावडर " १८ ग्रेनतक गरम पानीमें डालकर पिलाते हैं. इन दवाओंके बदलेमें आककी छालका चूर्ण १९ ग्रेन देनेसेभी वमन

होता है. केवल गरम पानी पिलाकर गलेमें पर फिरानेसेभी वमन होता है. वमनकी कोईभी दवा दी गयी हो उसके ऊपर बहुतसा गरम पानी या नमकका पानी पीनेसे वमनको उत्तेजना मिलती है. वमनके द्वारा यदि सारा विष निकल पडा तो फिर और किसी दवा या उपचारकी जरूरतही नहीं रहती; रोगीको झट आराम हो जाता है परंतु यदि वमन होनेके बादभी पूर्वोक्त विषचिन्ह दिखाई पडे तो समझलेना कि विष शरीरमें फैल गया है. और उस दशामें फिर रोगीको जागृत रखनेके उपाय करने चाहिएं.

जागृत रखनेकेलिये रोगीके मुंह तथा शरीरपर ठंडा पानी छिडकते रहना, सिरपर ठंडे पानीकी धार छोडते रहना, मुंहपर तथा सारे शरीर पर गीला कपडा रखना, खास करके मुंहपर गीला कपडा मारना, आखोंमें तीव्र अंजन करना, नाकके पास 'अमोनिया' या कलीका चूना और नौशादरका चूर्ण रखना, रोगीको पकडकर इधर उधर घुमाना उससे बातें करते रहना, जोरसे चिल्लाना—पुकारना, हिलाना, घबडाना इत्यादि उपाय करने चाहिएं. इसके अलावा वमन होनेके बाद तेज कॉफी या उसके अभावमें चाह १५।१५ मिनटके बाद पिलाते रहना. इससे बीमारको नींद नही आती. पेट और पिंडलियोंपर राईको पीसकर लेप करना. जायपत्री, लौंग, दारचीनी वगैरेह गरम चीजें खानेको देना.

अगर आदमी बेहोशसा हो गया हो तो "स्टमक पंप" के द्वारा विष निकाल डालना चाहिये. उसका लकडीवाला हिस्सा दातोंमें रखकर पेटमें डालनेकी नलीको तेल चुपडकर उसका अगला हिस्सा मोडकर या टेढा करके गलेमें छोडकर वहासे धीरे धीरे पेटमें दाखल करना. उसके बाहरके सिरेसे पिचकारी जोड देना और उसके अंदर पानी डालकर थरा देरमें उसे पिचकारीसे बाहर खींच लेना. इस तरह बाहर निकलनेवाला पानी जबतक कि अफीमकी दुर्गंधसे खाली न हो तबतक उस प्रकारसे पेट बराबर धोते रहना. आदमी यदि बिलकुलही बेहोश

हो तो उसे बिजली लगाना-विद्युत्प्रवाह उसके शरीरमें दाखल करना और उससेभी काम न निकले तो कृत्रिम श्वास चलाना.

'मॉर्फिया' 'लॉडेनम्' वगैरह अफीमसे बनी हुई दवाइयोंका विशेष उपयोग किया जाता है. इससे यदि किसी समय इन दवाइयोंकी अधिक मात्रा ली गयी तो उसका जहर अफीमहीकी तरह चढता है, और उसके लक्षणभी उसी तरहके होते हैं; फरक केवल इतनाही होता है कि ये दवाइया अफीमसे तेज होनेके कारण (क्योंकि यह उसका अर्कया सत्त होता है) इनका असर अफीमसे शीघ्रतर होता है.

मरणोत्तरकालीन स्वरूप— अफीम खाकर मरे हुए मनुष्यके शरीरपर कोई ऐसे चिन्ह या बदल सदल नहीं दिखाई देते कि जिनसे अफीम खानेका सुबूत पाया जाय. परंतु चीर फाड करके शरीरकी रासायनिक परीक्षा करनेसे पेटमें 'मेकोनिक ऍसिड' है या नहीं इस बातका निश्चय हो सकता है और उसपरसे अफीम खाने न खानेकी बात पक्की हो सकती है. अफीम खानेवालेके वमनमें अफीमकी गंध होती है. उसके पेटमें अफीम पायी जाती है. और मस्तिष्ककी रक्तनलिकाए लोहीसे विशेषतः भरी रहती हैं.

नित्यअफीम खानेवालोंकी दशा—नित्य अफीम खानेवालोंका शरीर कमजोर होता जाता है, उनका चेहरा फीका पडता है, आखें गहरी जाती हैं. अफीमची आदमियोंकी शकल सूरत कुछ ऐसे खास ढंगकी होती है कि उसे देखते ही झट आदमी उनको पहचान लेते हैं. उसके शरीरका हरेक अवयव दुर्बल हो जाता है, दस्त खुलकर नहीं होता, जठराग्नि मंद रहता है, अन्न अच्छी तरह हजम नहीं होता, हाथ पैर गिरे हुएसे दिखाई देते हैं और सारे शरीरके स्नायु ढीले पडते हैं. अफीमची जब अफीम खाते हैं तब कुछ देरतक उनको किसी कदर सुख और प्रसन्नता मालूम होती है परंतु उनमें काम करनेकी विशेष शक्ति नहीं होती. उनका मानसिक बलभी बहुत घट जाता है वे

जल्दी बूढे होवे हैं और जल्दीही मरते हैं. जिन बच्चोंको बचपहीसे अफीम खानेकी आदत डाल दी जाती है वे बच्चे फिर और बच्चों तरह हृष्ट पुष्ट नहीं होते.

बहुत दिनोंकी अफीम खानेकी आदत छोडते समय होनेवाले दुःख और उनकी चिकित्सा—इस विषयमें सबसे अधिक महत्वकी और अत्यावश्यक बात यह है कि अफीमचीको इस बलासे छूटनेकी उत्कट इच्छा होनी चाहिये. किसी प्रकार वैद्यसे छिपाकर अफीम नहीं खानी चाहिये. कितनेही अफीम छोडनेवाले ऐसे महात्मा होते है कि वे वैद्यके सामने तो अफीम छोडनेकी हा कर लेते हैं और पीछेसे छिपाकर अफीम खाते हैं. इस विषयमें वैद्यको सावधान रहना चाहिये. जो आदमी छिपाकर अफीम खाते हैं उसकी अफीमी आदत छुडानेका प्रयत्न करना वृथा है.

अफीमकी आदत छुडानेकी रीति—अफीम हमेशा नियत समयपर और ठीक तोलकर लेनी चाहिये. बिना तोले अंदाजसे लेनेसे आखिर अधिक अफीम खानी पडती है. क्योंकि नित्य नियमसे जराभी वह कम खानेमें आ गयी तो उसकी पूरी नशा उनको नहीं चढती और फिरसे उतनीही पूरी मात्रा लेनी पडती है; जिससे दोनों बारकी मिलाकर उनकी मात्रा नियमसेभी बहुत बढ जाती है. यह मालूम होने पर इसलिये हमेशा अफीम तोलकर खाना और पीछे धीरे धीरे उसकी मात्रा घटाते जाना. हररोज अफीम दीवारपर या लकडीपर घिसकर लेना और प्रति दिन एक एक बार अधिक घिसना ताकि उसकी मात्रा दिन ब दिन घटती जाय. अथवा हररोज तोलकरही आधी आधी रत्ती कम लेना. इस रीतिसे थोडी मात्रा लेनेवाले अफीमचियोंमेंसे कितनेही लोगोंकी आदत साफ छूट जाती है और कुछ आदमियोंकी घट जाती है. परंतु इस रीतिसे अफीम छोडनेमें अनेक प्रकारकी कठिनाइयां हैं और समयभी बहुत लगता है. जिसमेंभी बडी मात्रा लेनेवाले अफीमचियोंकी आदत इस री-

तिसे कभी छूटभी नहीं सकती. इसलिये एक बारही अफीम छोड देना अच्छा उपाय है. हरबार पाव पाव तोला अफीम खानेवाले आदमी भी इस दूसरी रीतिसे पंदरह दिनके अंदरही अफीमके बंधनसे साफ छूट जाते हैं. परंतु इस रीतिसे काम लेनेवाले वैद्य तथा अफीमची दोनोंही असाधारण धैर्यशाली और दृढचित्त होने चाहियें. डरपोक और चंचलचित्तके मनुष्य कभी इस रीतिसे सफलता नहीं प्राप्त कर सकेंगे. वैद्यको लाजिम है कि जिस अफीमीकी अफीम छुडानी हो उसको वह दिनमें पांच छ बार मिलकर हर बार उसको धैर्य और आश्वासन दिया करे. अफीमची आदमियोंकी अफीम जब एकदम रोक दी जाती है तब उसके शरीरमें बेहद पीडा होती है, शरीर बिलकुल शिथिल हो जाता है और वह हाथ पैर घिसने लगता है. उसके मनमें एक प्रकारका भय उत्पन्न होता है और जिसे देखता है, उसीसे अफीम मांगता है. इस तरह दिनभर वह अफीम ढूंढता रहता है सिवाय अफीमके उसको कोई बातही नहीं सूझती. उसकी जीभ सफेद हो जाती है, हाथ पैर ऐंठने लगते हैं, कमरमें दर्द होता है, पेटमें ऐंठन या मरोड होती है, रीडकी हड्डी फटी सी मालूम होती है और पहले जो उसको हमेशा कब्जियत रहती थी उसके बदले अब दस्त होने लगते हैं. दिन रातमें ४०।५० तक दस्त होते है और सारा शरीर पसीनेसे सराबोर हो जाता है. उसको दिन रातमें बिलकुल नींद नहीं आती, मुंहसे लार बहती है, आंखोंसे तथा नाकसे पानी टपकता रहता है, जबरदस्त तृषा लगती है, जठराग्नि मंद होता है और कभी कभी बहुत पेशाब छूटती है. इस अवस्थामें बीमार व्याकुल और हतोत्साह हो जाता है और बिना अफीमके मैं मरूंगा, अब नहीं जिऊंगा, इस तरह जोर जोरसे पुकारता रहता है. परंतु यह उसका भय केवल मिथ्या कल्पनाप्रसूत है. इस लिये ऐसे मौकेपर बुद्धिमान वैद्यका उचित कर्तव्य यह है कि वह स्वयं बीमारकी चिल्लाहटसे न घबडाकर बीमारको धैर्य और आश्वासन देकर ...

होनेवाले दस्त, अतिमूत्र, ऐंठन, शूल वगैरह उपद्रवोंकी योग्य चिकित्सा करता रहे. पूर्वोक्त उपद्रव अधिकसे अधिक एक सप्ताहतक होते रहते हैं. सामान्यतः चौथेही दिन वे हलके पडते हैं. परंतु वैद्यको लाजिम है कि एक सप्ताहतक बीमारको धैर्य दिलाकर उसकी चिकित्सा करता रहे.

चिकित्सा—अफीमका बंधन छोडनेवालेको पूर्वोक्त रीतिसे धैर्य दिलाकर कडवी और पुष्टिकारक चीजें खिलाना. पाद, पटोल, नीम और गिलोय इन चार चीजोंका क्वाथ दिनभरमें चार पांच बार पिलाना. इस क्वाथसे बीमारके शरीरमें शक्ति बनी रहती है और अफीमका बंधन छोडते हुए कष्टभी कम मालूम होता है. जिस दिनसे अफीम रोक दी जाय उस दिनसे एक सप्ताहतक यह क्वाथ पिलाना चाहिये. नींद न आती हो तो दिनमें एक-दो बार थोडासा भांगका चूर्ण तावेपर सेंककर खिलाना. खूब औटाया हुआ दूध दिनमें पांच सात बार पिलाना. दिन भरमें कमसे कम एक सेर पक्का दूध पिलाना चाहिये. दस्त बंद करनेके लिये अफीम या और कोई स्तंभक दवा हरगिज नहीं देनी चाहिये. अफीमसे दस्त तो बंद होंगे. परंतु उसकी अफीम खानेकी आदत कभी नहीं छूटेगी. यदि अफीमके सिवाय दूसरी कोई स्तंभक दवा दी जाय तो उससे पेट चढ जायगा. इस लिये दस्त बंद करनेकेलिये कोई स्तंभक दवा नहीं देनी चाहिये. दो तीन दिनके बाद दस्त खुद बखुद बंद होंगे. यदि कदाचित् अफीमची गांजा या तमाखू पीनेको मांगे तो दिनमें एक दो बार दिया जाय. बीडी या चुरट मांगे तो वहभी देनेमें कुछ हरज नहीं. इस प्रकारके उपचार करनेसे पांच छ दिनमें सब उपद्रव मिट जाते हैं. इनमें अव्वलसे आखिरतक गरम दूध, मोहनभोग, हलवा वगैरह पुष्टिकारक आहार खिलाना चाहिये. इस विषयमें इतनी बात ध्यानमें रखना अवश्य है कि अफीमचीको अफीम छोडते समय खूब दूध और घी खिलाना चाहिये. उसको अफीम छोडते समय जो कुछ क्लेश होते हैं उनको वह केवल अच्छे दूध-घीवाले आहारहीके स-

हारे सहन कर सकता है. उसको किसी खास दवाकी जरूरत नहीं रहती. उसके शरीरके भिन्न भिन्न अवयवोंमें जो पीडा होती है उसका शमन करनेकेलिये बचनाग ताजा घीमें जरा घिस कर खिलाना. एक महीनेतक कडवी और पुष्टिकारक दवाएं और अच्छा पुष्टिकारक आहार देनेसे अफीमची अफीमकी टेवसे साफ मुक्त होता है. पांच छ दिनके बाद उपद्रव शांत होने लगते हैं और धीरे धीरे उसके मनमें नया उत्साह पैदा होता है. चित्त शांत होता है और इस प्रकारका अपूर्व आनंद प्राप्त होता है कि जो अफीम खानेकी आदत पडनेके बाद उसको कभी न मिला होगा.

औषधी उपयोग–(१) अकराकरभादि चूर्ण—अकरकरा, सोंठ, नागकेशर, कबाबचीनी, छोटीपीपर, लौंग, जायफल और रक्तचंदन ये चीजें दो दो तोले और अफीम ८ तोले इन सबको कूटकर उनका कपडछन चूर्ण बनाकर उसमें उसके समप्रमाण शक्कर मिलाकर रखना और हरबार ३ से ६ रत्तीतक चूर्ण खाकर ऊपर गरम दूध पीना. यह पुरुषत्वकेलिये बहुत उपयोगी है. (२) अर्क-अहिफेनादि गुटिका—आकके सुखाये हुए फूलोंका चूर्ण दो तोले, सैंधा नमक दो तोले और सेंकी हुई अफीम आधा तोला ये तीनों चीजें एकत्र करके पानीसे उनकी २।३ रत्तीकी गोलियां बना रखना. गोलियां न बनाकर यदि चूर्णही लिया जाय तो उसकी मात्रा २ रत्ती लेनी चाहिये. रक्तपित्तमें या उरःक्षतमें जब खांसीके साथ लोही गिरता है तब ये गोलियां बडा काम देती हैं. (३) शंभुनाथरस— शुद्ध हरताल, शुद्धमनसिल, शुद्धहिंगुळ, शुद्ध संखिया, शुद्ध सोहागा, शुद्धबचनाग और फिटकरी ये चीजें एक एक भाग और शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक और शुद्ध अफीम ये तीन चीजें प्रत्येक सात भाग लेकर सबको एकत्र करके सात सात दिनतक भांग, निगुंड, नीम और धतूरेके रसमें घोटना और फिर एक एक रत्तीकी गोलियां बना रखना. पुरानी संग्रहणीमें-बारबार ज्वर चढ आता है और

होनेवाले दस्त, अतिमूत्र, ऐंठन, शूल वगैरह उपद्रवोंकी योग्य चिकित्सा करता रहे. पूर्वोक्त उपद्रव अधिकसे अधिक एक सप्ताहतक होते रहते हैं. सामान्यतः चौथेही दिन वे हल्के पडते हैं. परंतु वैद्यको लाजिम है कि एक सप्ताहतक बीमारको धैर्य दिलाकर उसकी चिकित्सा करता रहे.

चिकित्सा—अफीमका बंधन छोडनेवालेको पूर्वोक्त रीतिसे धैर्य दिलाकर कडवी और पुष्टिकारक चीजें खिलाना, पाद, पटोल, नीम और गिलोय इन चार चीजोंका काथ दिनभरमें चार पांच बार पिलाना. इस काथसे बीमारके शरीरमें शक्ति बनी रहती है और अफीमका बंधन छोडते हुए कष्टभी कम मालूम होता है. जिस दिनसे अफीम रोक दी जाय उस दिनसे एक सप्ताहतक यह काथ पिलाना चाहिये. नींद न आती हो तो दिनमें एक.दो बार थोडासा भांगका चूर्ण तावेपर सेंककर खिलाना. खूब औटाया हुआ दूध दिनमें पांच सात बार पिलाना. दिन भरमें कमसे कम एक सेर पक्का दूध पिलाना चाहिये. दस्त बंद करने के लिये अफीम या और कोई स्तंभक दवा हरगिज नहीं देनी चाहिये. अफीमसे दस्त तो बंद होंगे. परंतु उसकी अफीम खानेकी आदत कभी नहीं छूटेगी. यदि अफीमके सिवाय दूसरी कोई स्तंभक दवा दी जाय तो उससे पेट चढ जायगा. इस लिये दस्त बंद करनेकेलिये कोई स्तंभक दवा नहीं देनी चाहिये. दो तीन दिनके बाद दस्त खुद बखुद बंद होंगे. यदि कदाचित् अफीमची गांजा या तमाखू पीनेको मांगे तो दिनमें एक दो बार दिया जाय. बीडी या चुरट मांगे तो वहभी देनेमें कुछ हरज नहीं. इस प्रकारके उपचार करनेसे पांच छ दिनमें सब उपद्रव मिट जाते हैं. इनमें अव्वलसे आखिरतक गरम दूध, मोहनभोग, हलवा वगैरह पुष्टिकारक आहार खिलाना चाहिये. इस विषयमें इतनी बात ध्यानमें रखना अवश्य है कि अफीमचीको अफीम छोडते समय खूब दूध और घी खिलाना चाहिये. उसको अफीम छोडते समय जो कष्ट होते हैं उनको वह केवल अच्छे दूध—घीवाले आहारहीके स-

क्षरे सहन कर सकता है. उसको किसी खास दवाकी जरूरत नहीं रहती. उसके शरीरके भिन्न भिन्न अवयवोंमें जो पीडा होती है उसका शमन करनेकेलिये बचनाग ताजा घीमें जरा घिस कर खिलाना. एक महीनेतक कडवी और पुष्टिकारक दवाएं और अच्छा पुष्टिकारक आहार देनेसे अफीमची अफीमकी टेवसे साफ मुक्त होता है. पांच छ दिनके बाद उपद्रव शांत होने लगते हैं और धीरे धीरे उसके मनमें नया उत्साह पैदा होता है. चित्त शांत होता है और इस प्रकारका अपूर्व आनंद प्राप्त होता है कि जो अफीम खानेकी आदत पडनेके बाद उसको कभी न मिला होगा.

औषधी उपयोग—(१) अकराकरभादि चूर्ण—अकरकरा, सोंठ, नाग केशर, कबावचीनी, छोटीपीपर, लौंग, जायफल और रक्तचंदन ये चीजें दो दो तोले और अफीम ८ तोले इन सबको कूटकर उनका कपड़ छन चूर्ण बनाकर उसमें उसके समप्रमाण शक्कर मिलाकर रखना और हरबार ३ से ६ रत्तीतक चूर्ण खाकर ऊपर गरम दूध पीना. यह पुरुषत्वकेलिये बहुत उपयोगी है. (२) अर्क-आहिफेनादि गुटिका— आकके सुखाये हुए फूलोंका चूर्ण दो तोले, सेंधा नमक दो तोले और सेंकी हुई अफीम आधा तोला ये तीनों चीजें एकत्र करके पानीसे उनकी १।२ रत्तीकी गोलियां बना रखना. गोलिया न बनाकर यदि चूर्णही लिया जाय तो उसकी मात्रा २ रत्ती लेनी चाहिये. रक्तपित्तमें या उरःक्षतमें जब खांसीके साथ लोही गिरता है तब ये गोलियां बडा काम देती हैं. (३) शंभुनाथरस— शुद्ध हरताल, शुद्धमनसिल, शुद्धहिंगुल, शुद्ध संखिया, शुद्ध सोहागा, शुद्धबचनाग और फिटकरी ये चीजें एक एक भाग और शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक और शुद्ध अफीम ये तीन चीजें प्रत्येक सात भाग लेकर सबको एकत्र करके सात सात दिनतक भांग, निगुड, नीम और धतूरेके रसमें घोटना और फिर एक एक रत्तीकी गोलियां बना रखना. पुरानी संग्रहणीमें बारबार ज्वर चढ आता है और

बहुत भयंकर स्वरूपकी संग्रहणीमें तो ज्वर कभी हटताही नहीं ऐसी दशामें अद्रकके रसमें इस शंभुनाथ रसकी गोली लेनेसे ज्वर बहुत शीघ्र हलका पडता है और दस्तभी बंद होते हैं. (४) अफीम २ भाग कपूर १/२ भाग और कस्तूरी १/२ भाग इस हिसाब से ये तीनों चीजें लेकर उनका कपडछन चूर्ण करके उनकी एक एक रत्तीभरकी गोलिया बना रखना इन गोलियोसे स्त्रियोंका अत्यार्तव और प्रसूतिकालमें तथा गर्भपातके समय होनेवाला रक्तका अतिस्राव रुक जाता है सूतिका तथा सन्निपाततरोगमेंभी ये गोलिया अच्छा गुण दिखलाती हैं (५) अफीम आधा माशा, नींबूका रस एक तोला और मिसरी २ तोले इनको १० तोले पानीमें घोलकर पीनेसे वांति, दस्त, छातीकी धकधक, कलेजेकी जलन तथा तृषा ये विकार बंद होते है (६) कफहरिहररस–कौडी, चवक, सोंठ, मिरच, पीपर, कोको, शुद्धपारा, शुद्धगंधक, खानेके योग्य पीला रंग मिलता है सो और अफीम ये सब चीजें समभागसे लेकर कूटकर उनका कपडछन चूर्ण बना रखना और आवश्यकताके समयमें उचित अनुपानसे एक से दो रत्तीतक देना खासी, दम, कफ, शीतज्वर, अतिसार, संग्रहणी और हृद्रोग इन रोगोंमे यह अच्छा गुण करता है (७) सोंठ, गोल मिर्च, पीपर, लौंग, आककी जडकी छाल और अफीम इन चीजोंको समप्रमाणसे लेकर उनका कपडछन चूर्ण बनाकर शीशीमें भर रखना और खासी, दम, कफ अतिसार, संग्रहणी और कफपित्तके रोग इनमें एकसे दो रत्तीतक चूर्ण यथोचित अनुपानसे देना (८) सोंठ, मिरच, पीपर, नीमका गूद, शुद्ध भाग, ब्रह्मदंडी (उटंकटारी) के पत्ते, शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक और अफीम ये सब चीजें समभाग लेकर इनके फी तोलेके पीछे दो रत्तीके हिसाबसे कस्तूरी मिलाकर सबका चूर्ण बनाय रखना हरबार १ से २ रत्तीतक चूर्ण देना यह चूर्ण सब तरहकी सरदी तथा दस्तोंकी बीमारियोंमे अति हितकर है (६–७–८ये तीन प्रयोग हमारे एक मित्रके अजमाये हुए उसने हमें लिख भेजे हैं.

युरोपियन वैद्यकके अनुसार अफीमके मुख्य मुख्य कल्प

अफीमका लेप —(Opium Plaster ओपियम प्लॅस्टर)२॥ तोले अ-फीम और २२॥ तोले राल इन दोनोंको-खौलते हुए गरम पानीके ऊपर पानी उस पानीकी गरम भाफसे गरम करके एकत्र मिलाना.

अफीमका सत्त— (Extract of Opium एक्सट्रॅक्ट ऑफ ओपियम) ४०.तोले अफीमको चार सेर पक्के पानीमे घोऊकर २४ घंटेतक रखना और फिर छान लेना फिर उसको सवा सवा सेर पक्के पानीमें दो बार मिलाकर पहलेकी तरह छान लेना और खौलते हुए गरम पानीके ऊपर गोली बंधने लायक कठिन होनेतक रखना. मात्रा आधे ग्रेनसे २ ग्रेन तक.

अफीमका प्रवाही सत्त— (Liquid extract of opium लिक्विड एक्सट्रॅक्ट ऑफ ओपियम) २॥ तोले अफीमका सत्त ४० तोले पानीमें एक घंटेतक खूब हिलाकर फिर उसमें १० तोले रेक्टिफाइड स्पिरिट डालना और छान लेना. मात्रा १० से ४० बूंद तक.

अफीमका तेल —(Opium Liniment ओठ लिनिमेंट). अफीमका अर्क ५ तोले और ' लिनिमेंट ऑफ सोप ' आवश्यकतानुसार इन दोनों-का मिश्रण करना.

ॲसेटेट मॉर्फिया — (Acetate morphia) घटक द्रव्यः—हायड्रो क्लोरेट ऑफ मॉर्फिया ५ तोले, सॉल्यूशन ऑफ अमोनिया ॲसेटिक ॲसिड और स्वच्छ पानी आवश्यकताके अनुसार. रीति —प्रथम हायड्रोक्लोरेट ऑफ मॉर्फिया २॥ तोले पानीमें गलाकर उसमें सो-ल्यूशन ऑफ अमोनिया जबतक वह जरा अल्कलाइन न हो तबतक डालना जिससे मॉर्फिया नीचे बैठ जायगा. फिर उसको छान लेना और स्वच्छ पानीसे धो डालना. फिर उसको किसी कांचके बर-तनमें डालकर उसमे १० तोले पानी और मॉर्फिया गलनेके लिये जरूरी "ॲसेटिक ॲसिड' डालकर खौलते हुए गरम पानीके ऊपर उसे

रखकर अंदरका सारा पानी जला डालना. जो शेष रहेगा सो असे टे
मोर्फिया समझना. इसकी मात्रा ½ ग्रेनसे ¼ ग्रेनतक.

ॲसेटेट ऑफ मॉर्फियाका प्रवाही मिश्रण (Solution c
Acetate of Morphia) ॲसेटेट ऑफ मॉर्फिया ४ ग्रेन, डायल्यू
ॲसेटिक ॲसिड ८ बूंद, रेक्टिफाइड स्पिरिट २ ड्रम और स्वच्छ पा
६ ड्रम, इन सब चीजोंको मिश्रित करना. मात्रा १० से ६० बूंद.

हायड्रोक्लोरेट ऑफ मार्फिया (Hydrochlorate of Morphia
घटकद्रव्यकतरी हुई अफीम ४० तोले, क्लोराइड ऑफ क्यालिशियम
तोले शुध्द प्राणिज कोयला ७ ½ माशे, डायल्यूट हायड्रोक्लोरिक ॲसि
१ तोले और सोल्यूशन ऑफ अमोनिया तथा स्वच्छ पानी आवश्य
कताके अनुसार विधि— प्रथम अफीमको पंक्के सवा सेर पानीमें २
घंटेतक भिगो रखना और फिर ऊपरका जल उतार लेना. दूसरी बार
इसी तरह अवशिष्ट अफीमको उतनेही पानीमें १२ घंटे भिगो रखना
और ऊपरका जल उतार लेना. फिर तीसरी दफा ऐसाही करना.
इन तीनों दफाका पानी इकट्ठा करके गरम पानीके उपर रखना और
जब ५० तोले पानी शेष रह जाय तब उसको कपडेसे छान लेना. फिर
क्लोराइड ऑफ क्यालशियम १० तोले पानीमें घोलकर उसमें डालना
और यह साथ पानी जला देनेपर जो भाग शेष रह जायगा उसको
किसी मोटे मजबूत कपडेमें बांध कर खूब जोरसे निचोडना. निचोडनेपर
जो काला पानी रहेगा उसको अलग रखना. निचोडकर निकाले हुए द्रव्य
में २५ तोले खौलता हुआ पानी और थोडा ठंडा पानी डालकर
ब्लॉटिंग पेपरमेंसे छान लेना. इस छने हुए पानीको फिर गरम पानीकी
भाफसे जलाकर जो भाग शेष रहेगा उसको फिर पहलेकीतरह निचो-
डना. इसके बादभी यदि उसमें काले रंगका अंश विशेष हो तो फिर
तीसरी दफा इसी तरह करना. तीनों दफाका निचोडा पानी अलग रखना
और अवशिष्ट भाग १५ तोले खौलते पानीमें डालकर उसमें प्राणिज

कोयला डालना और २० मिनटतक उसको स्थिर रखकर फिर छान-लेना और कोयलोंपर खौलता हुआ पानी छोडना. फिर छने हुए पानीमें उससे कुछ अधिक सोल्यूशन ऑफ अमोनिया मिलाना. यह पानी ज्यों ज्यौं स्थिर होता जायगा त्यौं त्यौ मॉर्फिया उसके तले बैठता जायगा. उसको छाननेके कागजसे अलग करके दूसरे ठंडे पानीसे धोना और पांच तोले खौलते हुए पानीमें कांचके बरतनमें पिगलाकर उसमें हायड्रो-क्लोरिक ॲसिड मिला देना और खूब हिलाना. इस तरह सारा मॉर्फिया पिगल जानेपर पानीको ठैरने देना जिसमें हायड्रोक्लोरेट ऑफ मॉर्फिया तले जम जायगा. मात्रा $\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{2}$ ग्रेनतक.

Solution of Hydrochlorate of Morphia (हायड्रोक्लोरेट ऑफ मॉर्फियाका प्रवाही मिश्रण) हायड्रोक्लोरेट ऑफ मॉर्फिया ४ ग्रेन, डिल्यूट हायड्रोक्लोरिक ॲसिड ८ बूंद, रेक्टिफाइड स्पिरिट २ ड्राम और पानी ६ ड्राम इन सबको मिश्रित करना. मात्रा १० से ६० बूंदतक.

Compound Opium Powder (अहिफेनादि चूर्ण) अफीम ३॥ तोले, काली मिर्चका चूर्ण ५ तोले, सोंठका चूर्ण ९ तोले जीरा १९ तोले, और गोंद १। तोला इन सबका चूर्ण कपडछन एकत्र मिला देना. मात्रा २ से ५ ग्रेन.

अफीमका अर्क-(Tincture of Opium-Laudanum) कतरी हुई अफीम या अफीमकी बुकनी ३॥ तोले, ५० तोले प्रूफ स्पिरिटमें सात दिनतक भिगो रखना और फिर छान लेना. अगर स्पिरिट कुछ उड गया हो तो उसमें उतना और स्पिरिट डालकर ५० तोलेकी भरती कर लेना. मात्रा ५ से ४० बूंद. बच्चोंकोलिये $\frac{1}{2}$ से १ बूंद.

अफीमका आसव—(Vine of Opium) अफीमका सत्त २॥ तोले, दारचीनी ७५ ग्रेन और लौंग ७५ ग्रेन, ५० तोले. "शेरी वाइन" में भिगो रखना और छानलेना मात्रा १० से ४० बूंद.

अफीमका पाक या मुरब्बा-(Opium Confection) अहिफेनादि चूर्ण १९० ग्रेन और २॥ तोले शकरकी एकतारी चासनी इन दोनोंको एकत्र करना. मात्रा ५ से २० ग्रेन.

रखकर अंदरका सारा पानी जला डालना. जो शेष रहेगा सो ॲसे
मोर्फिया समझना. इसकी मात्रा ½ ग्रेनसे ¼ ग्रेनतक.

ॲसेटेट ऑफ मॉर्फियाका मवाही मिश्रण (Solution
Acetate of Morphia) ॲसेटेट ऑफ मॉर्फिया ४ ग्रेन, डायल्यू
ॲसेटिक ॲसिड ८ बूंद, रेक्टिफाइड स्पिरिट २ ड्राम और स्वच्छ पानी
६ ड्रम, इन सब चीजोंको मिश्रित करना. मात्रा १० से ६० बूंद.

हायड्रोक्लोरेट ऑफ मार्फिया (Hydrochlorate of Morphia)
घटकद्रव्यकतरी हुई अफीम ४० तोले, क्लोराइड ऑफ क्याल्शियम २
तोले शुध्द प्राणिज कोयला ७ ½ माशे, डायल्यूट हायड्रोक्लोरिक ॲसिड
१ तोले और सोल्यूशन ऑफ अमोनिया तथा स्वच्छ पानी आवश्य-
कताके अनुसार विधि— प्रथम अफीमको पौने सवा सेर पानीमें २४
घंटेतक भिगो रखना और फिर ऊपरका जल उतार लेना. दूसरी बार
इसी तरह अवशिष्ट अफीमको उतनेही पानीमें १२ घंटे भिगो रखना
और ऊपरका जल उतार लेना. फिर तीसरी दफा ऐसाही करना.
इन तीनों दफाका पानी इकठ्ठा करके गरम पानीके उपर रखना और
जब ५० तोले पानी शेष रह जाय तब उसको कपडेसे छान लेना. फिर
क्लोराइड ऑफ क्यालशियम १० तोले पानीमें घोलकर उसमें डालना
और यह साथ पानी जला देनेपर जो भाग शेप रह जायगा उसको
किसी मोटे मजबूत कपडेमें बाधू कर खूब जोरसे निचोडना. निचोडनेपर
जो काला पानी रहेगा उसको अलग रखना. निचोडकर निकाले हुए द्रव्य
में २६ तोले खौलता हुआ पानी और थोडा ठंडा पानी डालकर
ब्लॉटिंग पेपरमेंसे छान लेना. इस छने हुए पानीको फिर गरम पानीकी
भाफसे जलाकर जो भाग शेप रहेगा उसको फिर पहलेकीतरह निचो-
डना. इसके बादभी यदि उसमें काले रंगका अंश विशेष हो तो फिर
तीसरी दफा इसी तरह करना. तीनों दफाका निचोडा पानी अलग रखना
और अवशिष्ट भाग १६ तोले खौलते पानीमें डालकर उसमें प्राणिज-

कोयला डालना और २० मिनटतक उसको स्थिर रखकर फिर छान-लेना और कोयलोंपर खौलता हुआ पानी छोडना. फिर छने हुए पानीमें उससे कुछ अधिक सोल्यूशन ऑफ अमोनिया मिलाना. यह पानी ज्यों ज्यों स्थिर होता जायगा त्यों त्यों मॉर्फिया उसके तले बैठता जायगा. उसको छाननेके कागजसे अलग करके दूसरे ठंडे पानीसे धोना और पांच तोले खौलते हुए पानीमें कांचके बरतनमें पिगलाकर उसमें हायड्रो-क्लोरिक ॲसिड मिला देना और खूब हिलाना. इस तरह सारा मॉर्फिया पिगल जानेपर पानीको ठैरने देना जिसमें हायड्रोक्लोरेट ऑफ मॉर्फिया तले जम जायगा. मात्रा $\frac{1}{2}$ से $\frac{1}{2}$ ग्रेनतक.

Solution of Hydrochlorate of Morphia (हायड्रोक्लोरेट ऑफ मॉर्फियाका प्रवाही मिश्रण) हायड्रोक्लोरेट ऑफ मॉर्फिया ४ ग्रेन, डिल्यूट हायड्रोक्लोरिक ॲसिड ८ बूंद, रेक्टिफाइड स्पिरिट २ ड्राम और पानी ६ ड्राम इन सबको मिश्रित करना. मात्रा १० से ६० बूंदतक.

Compound Opium Powder(अहिफेनादि चूर्ण) अफीम ३॥।तोले, काली मिर्चका चूर्ण ५ तोले, सोंठका चूर्ण ९ तोळे जीरा१९ तोले, और गोंद१।तोला इन सबका चूर्ण कपडछन एकत्र मिला देना. मात्रा२सेप्रेन.

अफीमका अर्क—(Tincture of Opium-Laudanum) कतरी हुई अफीम या अफीमकी बुकनी ३॥। तोले, ५० तोले प्रूफ स्पिरिटमें सात दिनतक भिगो रखना और फिर छान लेना. अगर स्पिरिट कुछ उड गया हो तो उसमें उतना और स्पिरिट डालकर ५० तोलेकी भरती कर लेना. मात्रा ९ से ४० बूंद. बच्चोंकोलिये $\frac{1}{2}$ से १ बूंद.

अफीमका आसव—(Vine of Opium) अफीमका सत्त २॥ तोले, दारचीनी ७५ ग्रेन और लौंग ७५ ग्रेन, ५० तोले. " शेरी वाइन " में भिगो रखना और छानलेना मात्रा १० से ४० बूंद.

अफीमका पाक या मुरब्बा-(Opium Confection)अहिफेनादि चूर्ण १९० ग्रेन और २॥ तोले शक्करकी एकतारी चासनी इन दोनोंको एकत्र करना. मात्रा ५ से २० ग्रेन.

मॉर्फियाकी पिचकारीकी दवा–(Injection of Morphia) हायड्रोक्लोरेट ऑफ मॉर्फिया २ ग्रेन, रेक्टिफाइड स्पिरिट १८ बूंद, डिल्यूट हायड्रोक्लोरिक ॲसिड २ बूंद और पानी ४० बूंद. इन सब दवाओंको मिला देना और उसमेंसे ५ से २० बूंदतक दवा पिचकारीमें भरकर त्वचामे दाखल करना

मॉर्फियाकी पिचकारीकी दवा–(Injection of Morphia) हायड्रो क्लोरेट ऑफ मॉर्फिया २ ग्रेन, रेक्टिफाइड स्पिरिट १८ बूंद, डिस्टिल्ड हायड्रोक्लोरिक ॲसिड २ बूंद और पानी ४० बूंद. इन सब दवाओंको मिला देना और उसमेंसे ५ से २० बूंदतक दवा पिचकारीमें भरकर त्वचामें दाखल करना.